भगवान रामचन्द्र

लेखक
श्री विद्याभास्कर शुक्ल "साहित्यालङ्कार"

सम्पादक
श्री दयाशंकर दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०
अर्थशास्त्र-अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय

प्रकाशक
धर्म ग्रन्थावली
दारागंज, प्रयाग

प्रथमबार] १९३३ [मूल्य ।)

विषय सूची

संपादकीय वक्तव्य

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है—जब पृथ्वी में धर्म का नाश होने लगता है और अधर्म की वृद्धि होने लगती है तब मैं सज्जनों की रक्षा के लिए और दुष्टों के नाश के लिए, साथ ही अधर्म को दबा कर धर्म की वृद्धि करने के लिए अवतार ग्रहण करता हूँ । इस प्रकार प्रत्येक युग में मेरा अवतार होता है ।

मनुष्य की वृत्तियों का स्वभावतः विकास प्रायः तामस की ओर होता है, क्योंकि माया का चक्र ही ऐसा है । विरले ही पुरुष इस चक्र से बच पाते हैं । तामसवृत्ति का अधिक विकास ही अधर्मवृद्धि का मूल है । अधर्म की प्रावल्यता में आसुरी वृत्ति बलवती हो उठती है और उसके द्वारा धर्म (सतोवृत्ति) का नाश किया जाता है । इस प्रकार जब अधर्म बहुत बढ़ जाता है तो अवश्य ही किसी ऐसी महानशक्ति की आवश्यकता आ पड़ती है जो माया और माया जनित प्रबल आसुरी वृत्ति या अधर्म पर विजय प्राप्त करे । तब भगवान अपने को किसी रूप में प्रकट करके उस बढ़ते हुए अधर्म का नाश कर धर्म की पुनर्वृद्धि करते हैं ।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि भगवान सर्वशक्तिमान हैं

यह बिना अवतार ग्रहण किये ही अधर्म का नाश कर सकते हैं फिर अवतार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है ? यह ठीक है, परन्तु अल्पज्ञ मनुष्य पर प्रत्यक्ष घटनाओं का जो प्रभाव पड़ता है वह परोक्ष परिणामों का नहीं। एक चोर जितना प्रत्यक्ष राजदण्ड से डरता है उतना ईश्वर दण्ड से नहीं। माया जनित अधर्म को दबाने के लिये माया जनित विशेष शक्ति की हैं आवश्यकता होती है, जिससे सृष्टि क्रम को यथाविधि चलाने के लिये प्राणिमात्र माया में लिप्त रहते हुए भी उसकी आसक्ति से पृथक सात्विक वृत्ति को विकसित करे। इसलिए समय समय पर भगवान के अवतार होते हैं।

भगवान ने जहाँ जिस रूप में अवतार ग्रहण करने की आवश्यकता समझी है वहाँ उसी रूप में अपने को प्रकट किया है और नाश होते हुए धर्म की रक्षा की है। भगवान के सतयुग से कलियुग तक मुख्य दश अवतार हुए। इस पुस्तक माला में इन अवतारों के प्रत्येक चरित्र का वर्णन अवतार की दृष्टि से ही बड़े सुन्दर और रोचक ढंग से पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया गया है।

दशावतारमाला लिखने में धर्मग्रंथों में दी हुई भगवान की कथाओं से सहायता ली गई है। यदि इस ग्रंथमाला द्वारा भगवान के चरित्रों को समझने में कुछ भी सहायता मिली तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

दयाशंकर दुबे

भगवान रामचन्द्र

अवतार

जब जब होहि धर्म की हानी,
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।
तब तब धरि प्रभु विविध शरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

जब संसार में अधर्म बहुत होने लगता है और धर्म का नाश हो जाता है तो अधर्म को हटाने के लिये महापुरुषों का अवतार होता है जिसे भगवान् का अवतार कहते हैं। भगवान् राम का अवतार भी भारत भूमि में इसीलिये हुआ था। देव और दानव, मनुष्य और राक्षस सदैव से होते आये हैं। सज्जन साधु धर्मात्मा विश्वप्रेमी ही देव या मनुष्य होते हैं, वे ही अपनी दुष्टता असाधुता और अधर्म अत्याचार से विश्वद्रोही बन कर दानव या राक्षस हो जाते हैं। समय समय पर कभी दानव या राक्षस प्रबल हो जाते हैं, कभी देव या मनुष्य प्रबल

पुस्तक में हिन्दी कविता तुलसीकृत रामायण और अधिकांश श्लोक वाल्मीकि रामायण से उद्धृत किये गये हैं।

हो जाते हैं। देव या मनुष्यों की प्रबलता से प्रजा में सुख सम्पत्ति की बढ़ती और धर्म की वृद्धि होती है। दानवों या राक्षसों की प्रबलता से धर्मात्मा पीसे जाते हैं; प्रजा दुखी, चिन्तित भयभीत और सताई हुई रहती है, अधर्म की बढ़ती होती है।

त्रेतायुग में भी एकबार ऐसा ही समय आ उपस्थित हुआ। राक्षस प्रबल हुए, पुलस्त्य ऐसे श्रेष्ठ विप्रवंश में, पुलस्त्य के नाती रावण और कुंभकर्ण बड़े अधर्मात्मा और अत्याचारी पैदा हुए। उन्होंने अपने जुल्मों से तमाम पृथ्वी को कँपादिया। धर्मात्मा पुरुषों के प्राणों पर संकट आगया। रावण कुंभकर्ण ने पहले तो विकट तपस्या की। तपस्या के प्रताप से जब उन्हें अद्भुत शक्ति प्राप्त हुई तो अभिमान में आकर उन्होंने उस शक्ति का दुरुपयोग किया।

समुद्र के बीच लंका द्वीप में उस समय यक्ष (एक प्रकार के देवता) लोग राज्य करते थे। लंका बहुत सुन्दर बनी हुई थी।

दस मुख कतहिं खबर अस पाई, सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई।

यह सुनते ही रावण ने अपनी सेना सहित उसे जाकर घेर-लिया। उसका ज़ोर जुल्म देखकर बेचारे यक्ष अपनी अपनी जानें लेकर लंका छोड़ कर भाग खड़े हुए।

देखि बिकट भट बड़ि कटकाई, यच्छ जीव लै गये पराई।
फिर सब नगर दसानन देखा, गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा।
सुन्दर सहज अगम अनुमानी, कीन्ह तहाँ रावन रजधानी।

कटकाई=सेना। पराई=भागना।

रावण ने सुन्दर स्थान देखकर लंका को ही अपनी राजधानी बना लिया। और वहाँ निष्कंटक रहते हुए मनमाने अत्याचार करने लगा।

एकबार कुबेर पहँ धावा, पुष्पक यान जीति लै आवा।

कुबेर के यहाँ पुष्पक विमान था, रावण उसके यहाँ से जबर्दस्ती उसे छीन लाया। उसने अपने यहाँ सेना में एक से एक बढ़कर अत्याचारी भरती किये और बदमाश नौकर रखे जिनके हृदय में दया धर्म का लेश स्वप्न में भी न था।

कुमुख अकम्पन कुलिश रद, धूम्रकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय।
काम रूप जानहिं सब माया, सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया।

किसीको जब अन्याय और अनीति से सफलता मिलने लगती तो उसका अभिमान और भी बढ़जाता है और वह अधिकाधिक अत्याचार करने में प्रवृत्त होता है, फिर उसे धर्म का विचार लेशमात्र भी नहीं रहता। यही हाल रावण का हुआ। उसे अपने इतने ही अत्याचार से सन्तोष न हुआ।

दशमुख बैठि सभा इक बारा, देखि अमित आपन परिवारा।
सेन विलोकि सहज अभिमानी, बोला वचन क्रोध मद सानी।
सुनहु सकल रजनीचर यूथा, हमरे बैरी विबुध वरूथा।
वे सम्मुख नहिं करहिं लराई, देखि सकल रिपु जाहिं पराई।
तिनकर मरन एक विधि होई, कहहुँ बुझाय सुनहु सब कोई।

निकाय=समूह। रजनीचर=राक्षस। बिबुध=देवता।

द्विज भोजन मख होम सराधा, सबकर जाइ करहु तुम बाधा।
छुधा छीन बलहीन सुर, सहजहि मिलिहैं आइ।
तब मारिहउँ कि छाँडिहउँ, भली भाँति अपनाइ।

उसने अपनी अपार सेना और परिवार को देखकर घमण्ड में क्रोधपूर्ण हुक्म दे दिया—हे राक्षसो! मनुष्य और देवता सब मेरे जानी दुश्मन हैं। वे डरके मारे सामने तो लड़ने आते नहीं, छिपते फिरते हैं। इसलिये तुमलोग जाकर ढूँढ ढूँढ कर तमाम धर्मात्मा सज्जनों, ऋषि मुनियों, देवों का खाना पीना, संध्या-पूजा, दान-धर्म, यज्ञ-श्राद्ध आदि करना हराम करदो, किसी को कुछ न करने दो। जहाँ किसी को कुछ धर्म कार्य करते देखो उसे नष्ट भ्रष्ट करदो, जब ये लोग भूखे प्यासे, अशक्त, कमजोर हो जायँगे तो आप ही मेरे पास दौड़ आयेंगे तब मैं या तो सब को मरवा डालूँगा या राक्षसी धर्म पालन करने की शर्त मनवाकर छोड़ दूँगा। इन दुष्टों के मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम लोग जाओ और मेरी आज्ञा का पालन करो।

रावण का पुत्र मेघनाद भी बड़ा बलवान था। वह भी अपने पिता के अत्याचार में साथ देने लगा और धर्मात्माओं को सताने लगा। देवताओं में उसने हाहाकार मचा दिया। लोग उसके सामने आने में घबड़ाने लगे।

कोरि न होइ रन सन्मुख कोई, सुरपुर नितहि परावन होई।

रावण ने उसे भी बुलाकर सिखाया कि—

परावन—हार।

जे सुर समर धीर बलवाना, जिनके लरिबे को अभिमाना।
तिनहिं जीति रण बाँधेसि आनी, उठि सुत पितु अनुशासन काँधी।

जो बहादुर देवता हों उन्हें हराकर और बाँध कर मेरे पास ले आना। इस प्रकार सबको हुक्म देकर—

यहि विधि सबहिन आज्ञा दीन्हा, आपहु चलेउ गदा कर लीन्हा।

आप भी गदा लेकर निकल पड़ा। रावण का उस समय यह हाल हो गया कि—

चलत दशानन डोलत अवनी, गर्जत गर्भ स्रवन सुर रवनी।

उसके चलने से पृथ्वी काँपने लगी, उसकी भयंकर आवाज सुनकर स्त्रियों के गर्भ गिरने लगे।

रावण आवत सुनेउ सकोहा, देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा।
दिग पालन के लोक सिधाए, सूने सकल दशानन पाये।
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी, देइ देवतन गारि प्रचारी।
रण मद मत्त फिरै जग धावा, प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा।
रवि शशि पवन परुण धनुधारी, अग्नि काल यम सब अधिकारी।
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा, हठि सबही के पंथहि लागा।
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी, दश मुख वश वर्त्ती नर नारी।
आयसु करहिं सकल भयभीता, नवहिं आइ नित चरन विनीता।

भुजबल विश्व वश्य करि, राखेसि कोउ न स्वतंत्र।
मंडलीक मणि रावण, राज करै निज मंत्र॥

अनुशासन=आज्ञा। प्रति भट=वैरी। वशवर्त्ती=आधीन।

इस प्रकार रावण ने तमाम विश्व में अन्धेर मचा दी। स
को अपने वश में कर लिया। इधर इसने स्वयं तो इस भाँति स
को दुःखी और भयभीत कर दिया। उधर पुत्र मेघनाद औ
सैनिकों ने उसकी आज्ञा का पूरा पालन किया।

इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ, सो सब जनु पहले करि रहेऊ।
प्रथमहिं जिनका आयसु दीन्हा, तिनके चरित सुनहु जो कीन्हा।
देखत भीम रूप सब पापी, निशिचर निकर देव परितापी।
करहिं उपद्रव असुर निकाया, नाना रूप धरहिं करि माया।
जेहि विधि होहि धर्म निर्मूला, सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देश धेनु द्विज पावहिं, नगर ग्राम पुर आग लगावहिं।
शुभ आचरण कतहुँ नहिं होई, देव विप्र गुरु मान न कोई।
नहिं हरि भक्ति यज्ञ जप ज्ञाना, सपनेहुँ सुनिय न वेद पुराना।

जप योग विरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दशशीशा।
आपुहि उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा।
अति भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासै देश निकासै जो कह वेद पुराना।

द्विजों के, ऋषि-मुनियों, महात्माओं के धर्म कर्म नष्ट किये गये। इनके नगरों और ग्रामों में आग लगा दी गई। दान यज्ञ जप तप वेद उपनिषदों की कथा बन्द करवा दी गई। तमाम

निशिचर=राक्षस। निकर=समूह। मख=यज्ञ। श्रवण=कान। खीसै=दुःख दे।

शुभ आचरणों का नाश कर दिया गया। उन राक्षसों ने वे सब उपाय किये जिनसे धर्म का बिलकुल नाश हो जाय। जो राक्षसी धर्म से नहीं चलते थे उन्हें रावण के पास लाया जाता था। रावण उन्हें बहुत तरह से सताता था फिर देश निकाले की सजा देता था। चारों ओर सब भ्रष्ट आचार विचार हो गया था।

बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापन कौन मिति॥

राक्षसों ने किस प्रकार धर्म का नाश कर अधर्म का प्रचार किया, कितना जोर जुल्म और अत्याचार किया इसका वर्णन नहीं किया जासकता। उनके पापों की कोई हद नहीं रही, सब जगह "नाश" "नाश" की आवाज गूँजने लगी। धर्म के स्थान पर अधर्म का साम्राज्य छा गया। चारों ओर—

बाढ़े बहु खल चोर जुआरी, जे लम्पट पर धन पर नारी।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा, साधुन सों करवावहिं सेवा।

यह हाल उस समय था जब रावण का भाई कुंभकर्ण प्रायः रातदिन सोता ही रहता था। छैः महीने में एक दिन भोजन करता था।

अति बल कुम्भकर्ण अस भ्राता, जेहि कहँ नहिं प्रति भट जग जाता।
करि मद पान सोव षट मासा, जागत होहि तिहूं पुर त्रासा।
जो दिन प्रति अहार कर सोई, विश्व बेगि सब चौपट होई।

मिति=हद।

इस भाँति जब प्रत्यक्ष में सब ओर धर्म का नाश होकर अधर्म फैल गया, लोगों को लुक-छिप कर धर्माचरण करना दूभर हो गया, पृथ्वी घबड़ा उठी।

अतिशय देखि धर्म की हानी, परम सभीत धरा अकुलानी।

चारों ओर से त्राहि त्राहि की आवाजों का और आहों का धुआँ आकाश मंडल में व्याप्त हो गया। सभी के हृदयों से परम पिता परमात्मा की पुकार होने लगी। सभी अपने इष्टदेवों का ध्यान करने लगे। सभी स्तुति और प्रार्थना करने लगे।

जय जय सुर नायक जन सुख दायक प्रणत पाल भगवन्ता।
गोद्विज हितकारी जय असुरारी सिन्धु सुता प्रिय कन्ता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जाने कोई।
जो सहज कृपाला दीन दयाला करहु अनुग्रह सोई॥
जय जय अविनाशी सब घट वासी व्यापक परमानन्दा।
अविगत गोतीता चरित पुनीता माया रहित मुकुन्दा॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनिवृन्दा।
निशि बासर ध्यावहिं हरि गुण गावहिं जयति सच्चिदानन्दा॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविधि बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा॥

असुरारी = राक्षसों के दुश्मन। सिन्धुसुता प्रियकन्ता = लक्ष्मीपति। गोतीता = इन्द्रियों से रहित। पुनीता = पवित्र। विगत मोह = मोह रहित, निर्मोही। निशिबासर = रातदिन। अघारी = पापनाशी। अनुरागी = प्रेमी।

जो भव भय भंजन मुनिमन रञ्जन गञ्जन विपति वरूथा।
मन वच क्रम बानी छाँड़ि सयानी शरण सकल सुरयूथा॥
शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोउ न जाना।
जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना॥
भव-वारिध-मन्दर सब विधि सुन्दर गुण मन्दिर सुख पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

आर्तों की पुकार, दुखी हृदयों की सच्ची आह कोई और सुने या न सुने, पर भक्त भयहारी तो अवश्य ही सुनते हैं। वे तो ऐसे हृदयों को तलाशते फिरते हैं। भक्तोंके हृदयों में बैठ कर प्रत्यक्ष होनेवाली संसार की आसुरी माया देखा करते हैं। वे देखा करते हैं—दैत्य राक्षसों की तामसी वृत्ति की चरम सीमा, अभिमान पूर्ण अत्याचारों की पराकाष्ठा; उनकी चढ़ती हुई मदमस्ती का मध्याह्न सूर्य। वे उस मदमस्ती के मध्याह्न सूर्य को अस्ताचल में पहुँचाने के लिये दीन दुखियों की आहों के साथ मुसकुराते चले आते हैं। तभी तो उनका नाम दरिद्र नारायण है, दीनबन्धु है, दयासिन्धु है, अशरण शरण है। उन्हें भक्तों का संकट और धर्म का नाश सह्य नहीं।

अन्तरात्माओं की पुकार कभी खाली नहीं जाती। उसकी अप्रत्यक्ष दया के क्रोधी, अभिमानी, अत्याचारी, अधर्मात्मा नहीं

गंजन विपति वरुथा=विपत्तियों के नसाने वाले। द्रवहु=दयाकरो (पिघलो)। भववारिधि मंदर=संसार रूपी समुद्र से रक्षा करने के लिये मन्दराचल पर्वत के समान। भयातुर=घबड़ाये।

देख सकते। वे परतंत्र, अनाथों दुखियों की आहों का उपहास करते हैं, उनको ठुकराते हैं पर नहीं जानते कि इन आहों की प्रत्येक साँस में संसार को हिला देनेवाली, विश्व को क्षण में उलट पलट करदेनेवाली, अधर्म को जड़ से खोदकर मिटा देने वाली अजेय शक्ति छिपी है। यह आह उस धधकती हुई अग्नि की प्रबल ज्वाला है जिसकी लपेट में अधर्मी, पापी बात की बात में राख के ढेर दिखाई पड़ते हैं। उनका अत्याचार देखते देखते चारों ओर फैले हुए कुहरे की भाँति छट जाता है।

रावण के अत्याचार से धर्मात्माओं की आत्माएं तिलमिला उठीं। उनकी आर्तवाणी भगवान के कानों में पड़ी। भगवान ने देखा अधर्म का सूर्य मध्याह्न में है, पाप अपनी सीमा को लाँघना चाहता है, अब दुष्टों का नाश कर धर्मात्माओं की रक्षा करनी चाहिए और धर्म का पुनरुत्थान करना चाहिए। बस भगवान ने उनके हृदयों को आश्वासन दिया। एक आकाश-वाणी सी हुई—

जानि सभय सुरभूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक सन्देह॥

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा, तुम्हहि लागि धरिहौं नर वेसा।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई, निर्भय होउ देव समुदाई॥

फैले हुए अधर्म को नष्ट करने के लिये, अत्याचार को मिटाने के लिये, रावण और उनके सहायकों का नाश करने के लिये, ऋषि, मुनि मनुष्यों पर आये संकट को दूर करने के लिए, साधु

सन्तों का उद्धार करने के लिये और गृहस्थों की मिटती हुई लोक मर्यादा को फिर से स्थापित कर आदर्श रूप बनाने के लिये अवतार की आवश्यकता हुई और भगवान राम का अवतार हुआ।

राम जन्म

विप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार॥

उस समय उत्तर भारत में जहाँ राक्षस अधिकता से नहीं पहुँच सके थे और कहीं कहीं राजा लोग अपने धर्म कर्त्तव्यों का पालन करते हुए रह रहे थे। ऐसे ही स्थानों में अयोध्या प्रसिद्ध नगरी थी। अयोध्या के राजा उस समय दशरथ थे। महाराजा दशरथ बड़े प्रतापी और धर्मात्मा राजा थे। अपनी प्रजा का वे पुत्र की भाँति पालन करते थे। प्रजा भी उन्हें पिता की भाँति मानती थी। महाराज दशरथ के तीन रानियाँ थीं कौशिल्या, कैकेयी और सुमित्रा।

महाराज दशरथ के धन सम्पत्ति की कोई कमी न थी किन्तु उनके कोई पुत्र न था। इसकी चिन्ता उन्हें रातदिन सताए रहती थी। युवावस्था भी जब ढलने लगी और उनके कोई पुत्र न हुआ तो उन्हें और भी अधिक चिन्ता और दुख ने आघेरा। महाराजा दशरथ के सूर्यवंश में उनके पूर्वज अज, दिलीप, रघु, इक्ष्वाकु आदि बड़े यशस्वी, धर्मात्मा और प्रतापी राजा हो चुके थे वही

कुल अब सन्तान न होने से मिटने जारहा था इससे राजा दशरथ के दुख का कोई ठिकाना न था।

महाराज दशरथ के कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जी थे। उन्होंने राजा को अत्यन्त चिंतित देखकर ऋषि शृङ्ग को बुलवाया। ऋषि शृङ्ग तपस्वी मुनि थे और वे पुत्रेष्टि यज्ञ (जिस यज्ञ के करने से सन्तान उत्पन्न हो) कराना जानते थे। ऋषि शृङ्ग आये, महाराज दशरथ ने महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा से शृङ्ग ऋषि से पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। यज्ञ के अन्त में यज्ञ के प्रसाद स्वरूप ऋषि शृंग ने कुछ खीर महाराज दशरथ को देते हुए कहा—इसे लेजाकर अपनी रानियों को खिलादो, इससे तुम्हारे अद्वितीय सन्तान उत्पन्न होगी। महाराज दशरथ ने उस खीर को ले जाकर कौशिल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीनों रानियों में बाँट दिया।

तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं और यथासमय उनके पुत्र रत्न उत्पन्न हुए। चैत्र सुदी नवमी को महारानी कौशिल्या के गर्भ से भगवान राम का अवतार हुआ। उस समय का रुचिर वर्णन करते हुए श्री स्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं।

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशिल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनिमन हारी अद्भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन विशाला शोभा सिन्धु खरारी।

मनहारी=मनको हरनेवाले। अभिराम=सुन्दर।

कह दुहुँकर जोरी अस्तुत तोरी केहि विधि करहुँ अनन्ता।
माया गुण ज्ञाना तीत अमाना वेद पुराण भनन्ता।
करुणा सुख सागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्री कन्ता।
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशु लीला अति प्रिय शीला यह सुख परम अनूपा।
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै बालक सुर भूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भव कूपा।

गृह गृह बाज बधाव शुभ, प्रगट भये सुखकन्द।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द॥

श्री रामचन्द्र जी का जन्म सुनकर किसी की खुशी का ठिकाना न था। अयोध्या में बड़े जलसे मनाये गये। घर घर आनन्द बधाए बजे। दीन दुखियों गरीबों को खूब दान पुण्य किये

आयुध भुजचारी=चारों हाथों में शंख चक्र गदा पद्म लिये। अनन्ता=जिसका अन्त नहीं है। अतीत=रहित, बीता हुआ। अमाना=निरभिमानी। श्रीकन्ता=भगवान। आगर=घर। जन-अनुरागी—भक्त-प्रेमी। उपहासी=हँसी। भवकूपा=संसार रूपी कुआँ। थिर=स्थिर।

गये। दो चार दिन के ही अन्तर से रानी कैकेयी के गर्भ से भरत और रानी सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न के जन्म हुए। अब महाराज दशरथ की प्रसन्नता का क्या कहना? जिनका मुख रातदिन चिंता और ग्लानि से तेजहीन हो रहा था, चार चार पुत्र पाकर उसी मुख पर एकबार फिर कांति दौड़ गई। बुढ़ापे में मानो गये हुए प्राण वापस आये। गुरुवर महर्षि वशिष्ठ ने आकर सब के जात कर्म संस्कार और नाम करण संस्कारकराये।

बचपन और शिक्षा

सुख सन्दोह मोह पर, ज्ञान गिरा गोतीत।
दम्पति परम प्रेम बस, कर शिशु चरित पुनीत।

माँ बाप और सखी सहेलियों की गोद में पलकर चारों भाई भाँति भाँति के सुन्दर चरित्र करने लगे। महल के आँगन में दिन रात केलि करने लगे। चारों ही भाई शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा की भाँति दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। गोदी से घुटनों और घुटनों से पैरों के बल, आँगन से घर और घर से बाहर दौड़ने लगे। सखा समाज जुटने लगा, बाल खेल खेले जाने लगे।

इस तरह से जब कुछ काल व्यतीत हुआ और चारों भाई शिक्षा के लायक हुए तो महाराज दशरथ ने गुरु वशिष्ठ को बुलाकर चारों भाइयों को उनके सुपुर्द कर दिया।

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई, अल्प काल विद्या सब आई।

सन्दोह = समूह। मोह पर = मोह से परे।

थोड़े ही समय में गुरु वशिष्ठ ने चारों भाइयों को लिखा पढ़ा कर वेद शास्त्रों में पूरा पण्डित बना दिया। श्रीरामचन्द्र जी सब से बड़े थे इसलिये भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न उनका बड़ा आदर करते थे और सब बड़े भाई का कहना मानते थे। फिर भी श्रीरामचन्द्र जी से लक्ष्मण का और भरत जी से शत्रुघ्न का प्रेम अधिक था। लक्ष्मण सदैव ही श्री रामचन्द्र के साथ और शत्रुघ्न भरत के साथ रहा करते थे। यदि कहीं बाहर भी जाते तो इसी भाँति एक साथ जाया करते थे।

गुरु वसिष्ठ जी ने जब वेद विद्या में विद्वान बना दिया, और यज्ञोपवीत आदि संस्कार करा दिये तो चारों भाई शस्त्र विद्या सीखने लगे। इसी समय एक दिन मुनि विश्वामित्र महाराज दशरथ के यहाँ आ पहुँचे। महाराज दशरथ ने मुनि विश्वामित्र का ख़ूब आदर सत्कार किया और उनसे आने का कारण पूछा। मुनि विश्वामित्र ने बतलाया—महाराज दशरथ! आप जानते हैं इस समय इधर उधर राक्षस बहुत उत्पात करते फिर रहे हैं। उनके मारे साधु सन्तों की नाक में दम है किसी को वे चैन नहीं लेने देते। वनाश्रमों में तो वे बहुत ही उत्पात मचा रहे हैं। क्योंकि ऋषि मुनि साधु सन्तों के वास स्थान वन ही हैं। और उनसे ही धर्मोपदेश और संसार में ज्ञान प्रचार होता है। वे राक्षस धर्म के मूल को ही मिटा देना चाहते हैं इसलिये हम लोगों को बहुत सताते हैं और जहाँ कहीं शुभ कर्म होते देखते हैं उसका विध्वंस कर देते हैं।

मया त्वामाप्याः शरणं भयेषु
वयं च त्वयाप्त्यास्महि धर्म वृद्धयैः।
पात्रं द्विजत्वं च परस्परार्थं,
शंका कृथा मा प्रहिणुष्व सुनुम्॥

अर्थात्—भय उत्पन्न होने पर हम लोग आप की शरण में आते हैं और धर्म की वृद्धि के लिए आप लोग हमारी शरण में आते हैं। एक दूसरे के पास आना यह तो परस्पर का धर्म है। इस समय धर्म पर संकट पड़ रहा है इसलिये आप किसी प्रकार की शंका न कीजिए और धर्म रक्षा के लिये अपने पुत्र को भेजिए। आपने कहा श्रीराम अभी बालक हैं, यह ठीक है परन्तु उनकी शक्ति को मैं जानता हूँ, किसलिये उनका अवतार हुआ है यह मैं जानता हूँ आप इस विषय में जरा भी शंका न कीजिए। बालक राम अवश्य ही बात की बात में उन राक्षसों को मार भगावेंगे। वे श्रीराम के सामने ठहर नहीं सकते और श्रीराम के सिवा उन्हें कोई मार नहीं सकता। यदि आप संसार में धर्म की रक्षा और यश चाहते हैं तो श्रीराम को मुझे दे दीजिए। आप उन्हें कुछ समय के लिये मुझे सौंपिये। जिसका जो कार्य है उसे करने दीजिए।

न च तौ राम मासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन।
न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान्॥
अहं ते प्रति जानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ।
अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्य पराक्रमम्॥

२

यदि ते धर्म लाभं तु यशश्च परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र ! रामं मे दातु मर्हसि ॥

विश्वामित्र जी की बातचीत सुनकर वशिष्ट जी बोले—राजा दशरथ ! मुनिवर जो कह रहे हैं वह बिलकुल सत्य है। आप श्रीराम को भेजने में न हिचकिचाएं। उनका जन्म इसी-लिये हुआ है। उनसे संसार का कल्याण होना है।

यह सुनकर महाराज दशरथ ने श्रीरामचन्द्र को बुलाकर विश्वामित्रजी को सौंप दिया। लक्ष्मण जी तो सदैव उनके पीछे रहते ही थे। दोनों बालक धनुषबाण ले माता पिता गुरु को प्रणाम कर मुसकुराते हुए मुनि विश्वामित्र के साथ चल दिये।

ताड़का वध

विश्वामित्र श्रीराम लक्ष्मण सहित चलते चलते एक भयानक जंगल में जा पहुँचे उसमें मनुष्यों का कहीं नाम न था। तपस्वियों के आश्रम कहीं दिखाई न देते थे। ऐसे भयानक बन को देखकर श्रीराम ने पूछा—मुनिवर यह कौन सा जंगल है?

विश्वामित्र मुनि ने कहा—यहाँ ताड़का राक्षसी का राज्य है, उसी के आधीन और राक्षस यहाँ रहते हैं। उन्होंने आस पास देशों में हाहाकार मचा रखा है। यहाँ से कोई भी निकलता है तो इन राक्षसों से मारा जाता है।

राक्षसो रौद्र कर्मा निर्त्यं त्रासयते प्रजाः ।
इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ॥

इसलिये हे राम ! इस दुष्टा को मारकर आस पास के देशों को शान्ति देनी चाहिये। यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने धनुष को खींचकर जोरसे टंकोर किया जिससे जंगल में भयानक प्रतिध्वनि हुई। ताड़का भी घबड़ाई कि यह कौन विकट जीव आ गया। वह क्रोध में उन्मत्त मुँह फाड़कर आये हुए शब्द के ओर गर्जना करती हुई दौड़ी। श्रीरामचन्द्र जी ने उसको सामने आते हुए देखकर लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण ! देखो यह कैसी डरावनी राक्षसी है। यह पूरी मायाविनी है। आकाश में उड़ना जानती है और तरह तरह की मायाएं रच लेती है। ऐसी दुष्टा का नाश होना बहुत जरूरी है। अच्छा ठहरो पहले इसकी उड़ने की शक्ति नष्ट करदूँ।

ऐसा कहकर श्रीराम ने एक बाण उसकी ओर छोड़ा। वह दुष्टा बड़े क्रोधसे दोनों हाथों को उठाकर श्रीराम को खाने के लिए दौड़ी। उसे पास आया जानकर श्रीराम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके हाथ काट दिए। उसने भी तरह तरह के रूपों से श्रीरामचन्द्र को खाने की कोशिश की पर श्रीरामचन्द्र के सामने उसकी एक भी चाल न चली, उन्होंने उसके कलेजे में एकबाण ऐसा ताक कर मारा कि उस अचूक निशाने के लगते ही वह कटे हुए पेड़ की तरह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी और मर गई।

ताड़का के मरने से मुनि विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए। वर्षों से वनके उठते हुए उपद्रव शान्त हुए, आस पास की प्रजा में अमन चैन हुआ। विश्वामित्र जी ने श्रीराम लक्ष्मण को

शस्त्र विद्या की पूरी शिक्षा वहीं देदी। सभी तरह के अमोघ दिव्यास्त्रों को देकर उनका चलाना उन्हें सिखला दिया। फिर कुमारों सहित अपने आश्रमकी ओर बढ़े।

यज्ञ की रक्षा

मुनि विश्वामित्र अपने आश्रम में पहुँचे। विश्वामित्र और उनके साथ में मनोहर कुमारों की जोड़ी देखकर आश्रमवासी मुनि गण बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् राम को तो पद पद पर लोक मर्यादा स्थापित और सुरक्षित करनी थी। उन्होंने मुनियों को प्रणाम किया। मुनियों ने आशीर्वाद दिया।

रात बीती, सवेरा हुआ, विश्वामित्र मुनि गण सहित स्नानादि से निवृत्त हो यज्ञवेदी पर बैठे। श्रीराम ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—मुनिवर! मुझे किस समय यज्ञ रक्षा के लिए तयार रहना चाहिए। मुनि ने कहा—पुत्र! छै दिन लगातार तप होगा उसके बाद यज्ञ, वे दुष्ट राक्षस किसी भी समय आ सकते हैं, उनका कोई समय निश्चित नहीं है। ऐसा कहकर विश्वामित्र जी तप करने लगे। राम लक्ष्मण कमर कसकर रक्षा करने लगे। छै दिनरात बिना सोये हुए उन्होंने यज्ञ रक्षा की। छठे दिन यज्ञ वेदी जल उठी। वेद मंत्रों के साथ यज्ञ प्रारम्भ होगया। वेदमंत्रों की ध्वनि और यज्ञ के धुएं से मारीच सुबाहु राक्षस अपने साथियों सहित विघ्न करने आ पहुँचे। राक्षसों को प्रबल आँधी के समान आते देखकर श्रीराम

ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण! देखो कैसे काले बादलों के समान ये दुष्ट राक्षस बढ़ते चले आरहे हैं मैं यद्यपि ऐसे कमजोरों को मारना नहीं चाहता हूँ फिर भी धर्म की रक्षा के लिए इनका नाश करूँगा। ऐसा कहकर उन्होंने एक बहुत चमकीला तीक्ष्णबाण खींच कर मारीच पर फेंका जिसके लगने से मारीच सैकड़ों कोस दूरी पर बेहोश होकर जा गिरा। तब तक दूसरा बाण खींच कर सुबाहु के मारा जिससे वह वहीं चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। इसके बाद श्रीरामचन्द्र जी ने साधारण बाणों से अन्य राक्षसों को मार गिराया।

शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः।
राघवः परमोदारो मुनीनां मुदमावहन् ॥
सहस्रा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनन्दनः।
ऋषिभिः पूजित स्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥

इस प्रकार राक्षसों को मारकर श्रीरामचन्द्र ने यज्ञ की रक्षा की और मुनियों को प्रसन्न किया। श्रीराम भगवान के द्वारा इन राक्षसों का नाश होगया। धर्म की रक्षा हुई। हमारा कष्ट दूर हुआ ऐसा विचार कर मुनियों ने भगवान राम की इन्द्र के समान पूजा की। विश्वामित्र जी ने कहा—

कृतार्थोस्मि महाबाहो कृतं गुरु वचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतंवीर महायशः ॥

अर्थात्—हे बड़ी बड़ी भुजाओं वाले राम! तुम्हारी धर्मरक्षा

से मैं कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु की आज्ञा से राक्षसों को मारकर सचमुच ही इस आश्रम को सिद्धाश्रम बना दिया।

विवाह

उन्हीं दिनों मिथिलापुरी में राजा जनक के यहाँ उनकी कन्या सीता का स्वयंवर था। राजा जनक बड़े धर्मात्मा राजा थे। उनके दो लड़की थीं, सीता और उर्मिला। उनके यहाँ एक बहुत पुराना बड़ा मजबूत धनुष था जो शिवजी का धनुष कहा जाता था। यह धनुष इतना भारी और मजबूत था कि इसे तोड़ना तो दूर, कोई उठा भी नहीं पाता था। कितने ही आदमी गाड़ी पर खींचकर इसे कहीं लेजाते थे। हाँ सीताजी इसे उठा लेती थीं। राजा जनक ने सीता के स्वयंवर में प्रतिज्ञा की कि जो कोई इस धनुष को उठाकर चढ़ा देगा मैं उसीके साथ सीता का विवाह करूँगा। इस स्वयंवर के निमंत्रण उन्होंने देश-देशान्तरों में सब ओर भेजे थे।

मुनि विश्वामित्र को भी स्वयंवर का निमंत्रण मिला, वे श्रीराम लक्ष्मण को लेकर मिथिलापुरी पहुँचे। यहाँ दूर दूर देश विदेशों के हजारों राजा जुड़े थे। खचाखच दरबार भरा था, बड़े बड़े ऋषि मुनि महात्मा स्वयंवर देखने आये थे।

राजा जनक की प्रतिज्ञा सुनकर, विवाह के उत्सुक अनेकों राजा बड़े तपाक से धनुष उठाने के लिये अपने सिंहासनों से उठे परन्तु शरमाकर वापस आगये। धनुष किसी के हिलाए भी न

हिला। तब सब राजाओं ने मिलकर उसे उठाना चाहा परन्तु फिर भी वह टस से मस न हुआ तब तो सब बहुत ही लज्जित हुए। राजा जनक के शोक का ठिकाना न रहा। उन्होंने निराशा प्रकट करते हुए आये हुए राजाओं से कहा—अब आप सब अपने अपने घर जाइये। मैंने समझ लिया पृथ्वी में अब कोई वीर नहीं रहा। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से खाली होगई तो इतनी कड़ी प्रतिज्ञा न करता। खैर हुआ सो हुआ; सीता क्वांरी ही रह जायगी।

यह सुनकर स्वयंवर सभा में सन्नाटा छा गया। और तो कोई कुछ न बोला परन्तु लक्ष्मण से न रहा गया। उन्होंने रोष के साथ जनक की बातों का उत्तर दिया। फिर मुनि विश्वामित्र ने श्रीराम से कहा—पुत्र! तुम उठकर जनक का दुख दूर करो।

श्रीराम के उठते ही सब राजा लोग उनकी ओर देखकर हँसने लगे कि हमलोग सब मिलकर भी जिस धनुष को हिला तक न सके यह छोटा सा बालक उसे ही तोड़ने चला है। श्रीराम हँसते हुए धनुष के पास पहुँचे और सब के देखते ही देखते उन्होंने उसे सहज ही उठाकर चढ़ा दिया। चढ़ाते ही धनुष चटाक से टूट गया। बड़ा भयंकर शब्द हुआ राजा लोग काँप गये, धरती हिल सी गई। उपस्थित लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जनक जी शरमाते हुए श्रीराम की ओर ताक कर रह गये। सीताजी मन ही मन खुशी से फूली न समायीं। लक्ष्मण सब राजाओं की ओर गर्व से देखने लगे। विश्वामित्र हृदय में ही राम को

आशीर्वाद देने लगे। श्रीराम टूटे हुए धनुष के टुकड़ों को वहीं डाल, संसार को अपने अवतार का परिचय देते हुए सरल स्वभाव से विश्वामित्र के पास आ बैठे।

सीताजी ने उठकर जयमाला श्रीराम के गले में डाल दी। अयोध्या में राजा दशरथ के पास सब समाचार भेजे गये। वे बड़ी धूमधाम से बरात साजकर जनकपुर आये। श्रीरामचन्द्रजी का विवाह सीता के साथ लक्ष्मण का विवाह उर्मिला के साथ, जनक के भाई कुशध्वज की लड़कियों—मांडवी का विवाह भरत के साथ और श्रुतकीर्ति का विवाह शत्रुघ्न के साथ हो गया। गाजों बाजों के साथ बड़ी प्रसन्नता पूर्वक सब लोग अयोध्या को विदा हुए।

आज्ञा पालन

न राज्य सुनके कल जो प्रसन्न थी, न म्लान है आज वन प्रयाण में।
वही मुख श्री अभिराम राम की, सदैव ही मंगल कारिणी हो॥

विवाह के अनन्तर अयोध्या आकर चारों भाई बड़े आनन्द से रहने लगे, एक बार केकय देश से भरत के मामा आये। भरत और शत्रुघ्न कुछ दिन के लिए उनके साथ चले गये। पिता दशरथ की अवस्था ढल चुकी थी, वे वृद्ध होगये थे। उन्होंने एक दिन शास्त्रानुकूल राज्य भार राम पर सौंप कर वन में जाकर तपस्या करने का विचार किया।

अपने विचार के अनुसार राजा दशरथ ने एक दिन तमाम प्रजा के प्रतिनिधियों, मंत्रियों, विद्वानों को बुलाकर कहा—सभा-

सदो! मैं अब राज-सिंहासन राम को देकर तपस्या करना चाहता हूँ आप लोगों की क्या आज्ञा है? एकसाथ सब ने कहा—

रामः सत्पुरुषो लोके, सत्यः सत्य परायणः।
साक्षाद्रामा द्विनिवृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह॥

अर्थात्-श्रीरामचन्द्र जी लोक में अद्वितीय सत्पुरुष सत्याचरण करने वाले हैं। इन्होंने श्री और धर्म की स्थापना (पुनर्रक्षा) की है। ये सब तरह से योग्य हैं, इन्हें राज्य दीजिए।

अब क्या था, बड़ी जोरों से राज्याभिषेक की तयारियाँ होने लगीं। सब जगह निमंत्रण भेज दिये गये। श्रीराम को भी सूचना देने के लिये वसिष्ट जी उनके महलों में गये। गुरु वसिष्ट वो जानते थे कि श्री राम का अवतार राक्षसों के नाश के लिये हुआ है, राजगद्दी के लिये नहीं, उन्होंने श्री राम से कहा—

राम करहु सब संयम आजू, जो विधि कुशल निबाहैं काजू।

इधर राज्याभिषेक की तयारी हो रही थी। उधर विधाता का विधान कुछ और ही रचा जारहा था। जिसका अवतार धर्मरक्षा और अधर्म के नाश के लिये हुआ हो सचमुच वह राजसिंहासन पर कैसे बैठ सकता है?

रानी कैकेयी के मन्थरा नाम की एक दासी थी जो बड़ी ही कुटिल और फर्कशा थी। राम-राज्य सुन उसे बहुत दुख हुआ।

मन्थरा कैकेयी के पास पहुँची और उसने कैकेयी को उलटा सीधा समझा बुझा कर उसे इस बात के लिये राजी कर लिया कि राजा ने पहले जो दो वरदान उसे देने कहे हैं उनमें एक में

भरत को राजगद्दी और दूसरे में श्रीराम को चौदह वर्ष के लिये वनवास माँगे। दुर्बुद्धिन कैकेयी राज़ी होकर कोप भवन में जा बैठीं। राजा दशरथ को जब यह हाल ज्ञात हुआ तो वे रानी के पास जाकर बोले—प्रिये, क्यों रूठी हो! क्या चाहती हो?

रानी ने कहा—तुमने दो वर देने कहे थे सो आजतक नहीं दिये।

राजा ने कहा—रानी, यह तो कोई बात नहीं, तुम अपने वर अभी माँग सकती हो जो मैंने देने के लिए कह दिया, उससे पीछे नहीं हट सकता। याद रखो—

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई।

रानी ने कहा—अच्छा तो मैं एक वर यह माँगती हूँ कि राजगद्दी भरत को हो। दूसरा वर यह माँगती हूँ कि रामचन्द्र आज ही चौदह वर्ष के लिये वन को चले जायँ।

यह सुनते ही महाराज दशरथ का हृदय धक से रह गया, वे कुछ बोल न सके, पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़े। चेत होने पर बोले—क्या सचमुच तू ये ही वर माँग रही है! क्या मेरा जीवन लेना चाहती है?

रानी ने कहा—जबतक आप ये वर न देंगे मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगी। तुमने क्या समझा था कि मैं चबेना माँगूँगी।

इसी प्रकार की बातचीत में, रोते कलपते, चेतन और अचेतन अवस्था में किसी प्रकार रात बीती, सवेरा हुआ। अयोध्या के आबाल वृद्ध नर नारी आँखें फाड़ फाड़ कर राजतिलक के शुभ लग्न की बाट जोहने लगे।

मंत्री सुमंत्र कोप भवन में पहुँचे। राजा मूर्च्छित पड़े थे। रानी काली नागिन की भाँति फुसकारें छोड़ रही थी। सुमंत्र ने देखा—दाल में कुछ काला है। उसने पूछा—क्या बात है महारानी! महाराज आज अबतक नहीं उठे? रानी ने कहा—सुमंत्र! तुम राम को बुला लाओ, राजा उनसे कुछ कहना चाहते हैं।

सुमंत्र उलटे पाँव रामचन्द्र जी के महलों को लौटे और उन्हें साथ लेकर दशरथ जी के पास उपस्थित हुए। रामचन्द्र जी को पिता जी का विकृत हाल देखकर बड़ा खेद हुआ। उन्होंने आश्चर्य और खेद से पूछा—माता जी! पिता जी का यह क्या हाल है, इनकी ऐसी अवस्था क्यों है, मुझे इनके इस हाल से बड़ी व्याकुलता हो रही है, शीघ्र कहो क्या कारण है?

कैकेयी ने कहा—राम! राजा जो तुमसे कहना चाहते हैं, उसमें उन्हें सन्देह है कि तुम उनकी आज्ञा का पालन करोगे या नहीं। इसी सन्देह और मोह में वे कुछ न कहकर चुप पड़े हैं।

श्री राम ने उद्वेग से कहा—माँ, आज तुम यह क्या कह रही हो। क्या मैंने कभी स्वप्न में भी माता पिता की आज्ञा उल्लंघन करने का विचार तक किया है? ओह! पिता जी के चित्त में यह विचार कैसे आया? राम यदि ऐसा विचारे तो उससे बढ़कर अभागा और अधर्मात्मा कौन होगा? माँ, तुम्हारी आज्ञा! पिता की आज्ञा का उल्लंघन!

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुमामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेय मपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणापित्रा नृपेण च हितेन च॥
तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञा यदभिकांक्षितम्।
करिष्ये प्रति जाने च रामो द्विर्नाभिभाषते॥

तुम को कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए माँ! मैं माता पिता गुरु और हितकारी की आज्ञा से आग में कूद सकता हूँ, हलाहल जहर पी सकता हूँ। समुद्र में कूद सकता हूँ। जो कहें कर सकता हूँ। तुम बोलो, जल्द बोलो! पिता जी की क्या इच्छा है? उनकी क्या आज्ञा है? याद रखो राम एक बार कह कर उसे पलटना नहीं जानता है।

यह सुनकर प्रसन्न हृदय कैकेयी ने कहा—राम! मुझे तुम्हारे पिता ने दो वर दिये थे। आज मैंने वे दोनों वर माँग लिये। एक वर मैंने भरत को राज गद्दी का मांगा है। दूसरा—तुम चौदह वर्ष के लिए वन जाओ। अब राजा मोह और सन्देह वश तुम से नहीं कह सकते कि तुम वन जाओ, यही बात है।

श्रीराम ने कहा—इतनी जरा सी बात के लिये राजा इतने दुखी हैं। पिता जी से कहो वे उठकर भरत के राजगद्दी की तयारी करें, राम अभी वन को जाता है। मेरे लिये इससे बढ़कर प्रसन्नता की क्या बात होगी कि मैं वन में आनन्द करूँ और भैया भरत राजगद्दी संभालें।

वन गमन

ऐसा कह कर श्रीराम माता पिता को प्रणाम कर वन गमन के लिये तैयार होने चल दिये। बात की बात में बिजली की तरह तमाम बातें अयोध्या में फैल गई। जिस अयोध्या में अभी अभी नगाड़ों और बाजों की आवाज सुनाई पड़ रही थी, अब उसमें चीत्कार की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं।

श्रीराम वल्कल वस्त्र धारण कर और सबको प्रणाम कर वन को निकल पड़े। भातृ प्रेमी भक्त लक्ष्मण और पतिपरायणा सीता उनके साथ हुई। श्रीराम ने उन्हें बहुत समझाया पर वे साथ चलने को अड़गई, श्रीराम लाचार होगए। तमाम अयोध्या में हाहाकार मच गया। सभी राम को वन जाने से रोकना चाहते थे पर श्रीरामचन्द्र पिताजी की आज्ञापालन से नहीं हट सकते थे। अयोध्यावासी भी पीछे पीछे चल दिये।

अयोध्या से चलकर श्रीरामजी तमसा नदी के किनारे आये और प्रथम दिन वहीं ठहरे। अयोध्यावासी भी साथ थे। श्रीराम उन्हें फेरना चाहते थे। इसलिये आधीरात के समय जब सब लोग गाढ़ निद्रा में सो रहे थे—श्रीराम, सीता और लक्ष्मण को जगा कर चल दिये। प्रातःकाल जब सब लोग जागे और सब ने देखा कि श्रीराम नहीं हैं उनके पदचिह्न भी नहीं दिखाई पड़ते तो सब शोक से दुखी अयोध्या को लौट आये।

श्रीरामचन्द्रजी वहाँ से शृङ्गवेरपुर गङ्गा किनारे आये। यहाँ का राजा गुह नामक मल्लाह था। वह यह सुनकर कि—

शुद्ध सच्चिदानन्द मय, राम भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरति, संसृति सागर सेतु॥

अर्थात्—भगवान के अवतार श्रीराम मनुष्यों के समान सब के कल्याण के लिये लोक चरित्र कर रहे हैं। गुह बहुत खुश हुआ और बड़ी श्रद्धा के साथ श्रीरामचन्द्र के पास पहुँचा।

सन्त पुरुष या लोक मर्यादा को स्थापित करने वाले, प्राणि-मात्र को एक दृष्टि से देखते हैं, उनके हृदयों में भेद भाव के विचार स्थान नहीं पाते। श्रद्धायुत गुह को आया देख श्रीराम ने यह कहते हुए कि—

पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेह संदर्शनेन च।
भुजाभ्यां साधु वृत्ताभ्यां पीडयन्वाक्य मब्रवीत्॥

अर्थात् आप पैदल चल कर यहां आये और हम लोगों के प्रति प्रेम दिखाया। भगवान ने गुह को बाहुओं में भर कर छाती से लगा लिया। गुह निषाद था, अस्पृश्य शूद्र था पर उसे भगवान ने छाती से लगाया था। भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम थे। तभी तो जब भरत जी रामचन्द्र जी को फेरने के लिए जङ्गल में आये तो उन्होंने भी गुह को उसी भाँति भेंटा। यही नहीं, जब गुह ने संकोच से महर्षि वशिष्ठ को दूर से ही प्रणाम किया तो उन्होंने—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू, कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रनामू।
राम सखा ऋषि बरबस भेंटा, जनु महि लुठत सनेह समेटा।
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं, बड़ वसिष्ठ सम को जग माहीं।

जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनि राउ।
सो सीतापति भजन को, प्रगट प्रताप प्रभाउ॥

गङ्गा पार कर श्री रामचन्द्र जी प्रयाग, भरद्वाज मुनि के आश्रम में आये। और भरद्वाज मुनि से पूँछ कर चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूट का प्राकृतिक सौन्दर्य देख कर श्रीरामचन्द्र जी ने वहीं लक्ष्मण को पर्णकुटी बनाने की आज्ञा दी। सुन्दर कुटी बनाई गई। भगवान राम सीता और लक्ष्मण सहित उसी में रहने लगे। वेद शास्त्रों की कथाओं, वेद मन्त्रों की ध्वनियों, और नित्यप्रति के ऋषि मुनियों के समागम सत्संग से चित्रकूट जगमगा उठा। उसकी शोभा पहले से दुगनी हो गई।

अयोध्या और भरत

प्रजा तमसा नदी के पास से श्रीराम को न पाकर लौट गई। सुमंत्र उन्हें गङ्गा जी के समीप तक पहुँचा कर लौटे। जब वे अयोध्या आये तो श्रीराम से रहित अयोध्या उजड़ी हुई मालूम देती थी, कोई किसी से कुछ पूछने वाला न था, सब शोक मग्न पड़े हुए थे। सुमंत्र महलों में पहुँचे, भाँय भाँय करते हुए महल मानो खाने दौड़ते थे। महाराज दशरथ बेहोश पड़े थे। सुमंत्र का आना सुन कर कुछ सचेत हुए। सुमंत्र की ओर देख कर बोले—राम कहाँ है? उसे लौटाल लाए न? सुमन्त्र ने उत्तर दिया—महाराज! मैंने सब को बहुत समझाया पर श्रीराम लक्ष्मण और सीता में कोई भी लौटने को तैयार न हुआ।

यह सुन कर दशरथ ने 'हा राम! हा राम!' कहते हुए यहीं शरीर त्याग दिया। राम वियोग से सब व्याकुल थे ही, अब तो किसी के दुख का ठिकाना न रहा। दशरथ जी का मृत शव तेल में रखा गया और भरत शत्रुघ्न को बुलाने के लिये उनके मामा के यहाँ दूत भेजे गये।

भरत जी शंकित चित्त से अयोध्या आये। सुनसान अयोध्या को देख कर उन्हें बेचैनी पैदा हुई। वे घबड़ाए हुए माता कैकेयी के पास पहुँचे। वह प्रसन्न थी। भरत ने उसे प्रणाम कर पिता का कुशल पूछा। कैकेयी ने सब हाल सुना दिया। भरत टूटी हुई लकड़ी की तरह "तूने मेरा नाश कर दिया" कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। चेत होने पर माता को बहुत कुछ बुरा भला कहा।

वसिष्ठ जी के समझाने पर भरत को कुछ धैर्य्य हुआ। उन्होंने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया की। शान्ति होने पर दरबार जुड़ा। सब ने भरत से अयोध्या का राज्य भार सँभालने की प्रार्थना की। भरत ने कहा—आप लोग कैसी बातें कर रहे हैं। क्या धर्मस्थान में भी अधर्म करना चाहते हैं? मुझसे राज्य से क्या सम्बन्ध? राज्य बड़े भाई राम का है, वे ही इस गद्दी पर बैठेंगे। रघुकुल में अनुचित या अधर्म की बात नहीं हो सकती। आप लोग मोह में पड़ कर ऐसी बातें न करें। सब लोग मिल कर वन चलें और भाई को मना लावें यही मेरी सम्मति है। सब ने एक स्वर से साधु साधु कहते हुए भरत के वचन की पुष्टि की।

दूसरे ही दिन श्री रामचन्द्र जी के पास चलने की तयारी की गई।

अच्छे पहरुओं को अयोध्या के पहरे पर रख कर भरत अयोध्या की तमाम प्रजा के सहित भाई को मनाने वन की ओर चले। बालक वृद्ध जवान सभी ऐसे खुश थे मानों उन्हें रामचन्द्र जी ही मिल गये हों। फौज फाटा गाजे बाजे, राजतिलक का सब सामान साथ चला। सब लोग चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र जी के आश्रम के पास पहुँच गये।

गुरु सहित माताओं और नगर वासियों को वहीं छोड़ भरत जी शत्रुघ्न और गुह सहित श्रीराम से मिलने आगे बढ़े। उन्होंने दूर से ही देखा। श्रीरामचन्द्र जी वल्कल वस्त्र पहने, जटाजूट रखे, धनुषवाण धारण किये हुए कुटी के बाहर यज्ञ वेदी के पास चबूतरे पर बैठे, सीता जी से उपनिषद की कथा कह रहे हैं। लक्ष्मण जी पीछे धनुषवाण लिए खड़े हैं।

यह दृश्य देखकर भरत की आँखों में आँसू भर आये। वे वहीं से दंडवत प्रणाम करते हुए श्रीराम की ओर बढ़े और—

पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं।

हे स्वामी रक्षा करो ऐसा कहते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। रामचन्द्र जी भरत को सामने पड़ा देखकर—

जटिलं चीर वसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा॥
कथंचिदभिविज्ञाय विवर्णं वदनं कृशम्।

भ्रातरं भरतं रामः परिषस्वजे पाणिना ॥

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।

बरबस लिये उठाय उर, लाए कृपानिधान।

भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान ॥

जटा चीर धारण किये, हाथ जोड़कर जमीन में पड़े, प्रलय काल के सूर्य के समान दुर्दर्श, सूखे मुँह, कृशगात, भरत को किसी तरह पहचान कर श्रीराम एक दम ही प्रेम से अधीर, कहीं वस्त्र, कहीं धनुष फेंकते हुए उठे और दौड़कर भरत को बरबस उठाकर छाती से लगा लिया। फिर शत्रुघ्न से मिले।

इसके पश्चात् कुशल प्रश्न पूछा—भरत ने सब हाल सुनाया। पिता का मरण सुनकर श्रीराम, दुखित हुए। फिर गुरु माताओं तथा संग आगत अयोध्या वासियों से मिले। नदी किनारे जाकर मृत पिता को श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई।

दूसरे दिन सब वनवासी, अयोध्यावासी, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ आदि एक जगह एकत्रित हुए। भरत जी ने हाथ जोड़ अपने आने का अभिप्राय सुनाया और कहा—

अमरोपम सत्वस्त्वं, महात्मा सत्य संगरः।

सर्वज्ञः सर्वं दर्शीच, बुद्धिमांश्चापि राघवः।

अभ्यामेवं गुणैर्युक्त प्रभवाभव कोविदम्।

अविषह्यतमं दुःख मासादयितुमर्हति ॥

प्रोषिते मयि यत्पापं माता मत्कारणात्कृतम्।

क्षुद्रया तदनिष्टं मे प्रसीदतु भवान्मम ॥

हे देवतुल्य भगवान रामचन्द्र ! आप सतोगुणी, महात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, बुद्धिमान, गुणों से युक्त, जन्म मृत्यु का रहस्य जाननेवाले, असह्य दुखों में भी समान रूप से रहनेवाले हैं। मेरी अनुपस्थिति में मेरी दुष्टा माता ने जो अनिष्ट किया है उसे क्षमा करें। अब आप अयोध्या चलकर राज्य कार्य संभालें यही मेरी आप से करबद्ध प्रार्थना है।

इसी प्रकार भरतजी ने बहुत कुछ कहा सुना परन्तु सत्य धर्म मार्ग के आगे उनके कहने का कुछ भी असर श्रीरामचन्द्रजी के हृदय पर न हुआ। वे अपने सत्य संकल्प पर दृढ़ रहे। जब भरतजी ने देखा कि भाई किसी प्रकार अयोध्या लौटने को तैयार नहीं तो बोले—स्वामी ! आप अपनी चरणपादुका (खड़ाऊँ) मुझे दे दें, आप के अयोध्या लौटने तक ये ही राज्य सिंहासन पर बैठ कर राज्य करेंगी, मैं इन्हीं के प्रसाद से राज्य प्रबन्ध का सञ्चालन करूँगा।

भरत का अद्भुत और अपूर्व प्रेम देखकर श्रीरामचन्द्र भरत की इस प्रार्थना को न टाल सके। उन्होंने अपनी खड़ाऊँ उतार कर भरत को दे दीं। भरत का मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा। उन्होंने खड़ाऊँओं को छाती से लगा लिया। इसके बाद सब परस्पर मिलकर विदा हुए।

चरणपादुका

भरत ने अयोध्या लौटकर दरबार किया। राज्य सिंहासन पर खड़ाऊँ रखी गई, उनका अभिषेक किया गया। भरतजी ने

भाई शत्रुघ्न और गुरु वशिष्ठ से कहा—आपलोग भगवान राम का ही आदेश समझ और उनकी चरणपादुका को उनके तुल्य मान प्रजा का पालन और प्रबन्ध उसी भाँति करें जिस भाँति पिताजी करते थे। प्रजा को किसी प्रकार के दुख या अव्यवस्था का अनुभव न होना चाहिये। मैं नन्दीग्राम में जाकर भाई के लौटने तक वहीं तपस्या करूँगा।

ऐसा कहकर भरत राज्य प्रबन्ध शत्रुघ्न और गुरु पर छोड़ कर आप अयोध्या से दश मील दूर नन्दीग्राम में जाकर तपस्या करने लगे।

सत्य संकल्प

यह पहले बतलाया जा चुका है कि रावण की आज्ञानुसार जगह जगह राक्षस अनेक उपद्रव कर रहे थे, ऋषि वनों में तो उन्होंने अन्धेर मचा रखा था। एक दिन श्रीरामचन्द्र जी से एक मुनि ने आकर कहा—

दर्शयन्ति हि बीभत्सैः क्रूरैर्भीषणकैरपि।
नाना रूपै विरूपैश्च रूपैरसुख दर्शनैः॥
अप्रशस्तैरशुचिभिः संप्रयुज्य च तापसान्।
प्रतिघ्नन्त्यपरान् क्षिप्र मनार्याः पुरतः स्थितान्॥
तेषु तेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीय च।
रमंते तापसांस्तत्र नाशयन्तोऽल्प चेतसः॥
अवक्षिपन्ति स्रुग्भाण्डानग्नीन्सिञ्चन्ति वारिणा।
कलशांश्च प्रमर्दन्ति हवने समुपस्थिते॥

अर्थात्—हे महाराज! राक्षस लोग बड़े ही भयानक, क्रूर, अद्भुत डरावने रूप बना कर ऋषि मुनियों को डराया करते हैं। अनार्य पापी अशुद्ध चीजों से तपस्वियों को छुआकर मार डालते हैं। ऋषि आश्रमों में तरह तरह के रूप रखकर आकर छिप जाते हैं और ऋषियों को मार मार कर बहुत खुश होते हैं। उनके यज्ञ के स्रुवा आदि पात्रों को फेंक देते हैं, जला देते हैं, बड़े आदि तोड़ फोड़ देते हैं। हवन के समय इस प्रकार के उपद्रव करके हवन नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं और बहुत सताते हैं।

चित्रकूट में आनन्द से समय विताने वाले, धर्म कथाओं की चर्चा करने वाले श्रीरामचन्द्र भरत के आने के बाद से यह सोच ही रहे थे कि अब चित्रकूट छोड़ देना चाहिए। यहाँ रहने से भरतादि की याद आती है, दूसरे अयोध्या वासी जब चाहेंगे यहाँ आजावेंगे इससे शान्ति में विघ्न होगा, इसलिये चित्रकूट छोड़ना ही उचित है। ऐसे ही समय ऋषियों के राक्षसों-सम्बन्धी उत्पात सुनकर अब उनके विचार और भी दृढ़ हो गये। उन्होंने सोचा कि एक स्थान पर निश्चित रूप से रहना उचित नहीं। थोड़े थोड़े समय भिन्न २ स्थानों पर रहते हुए राक्षसों का नाश करना और बढ़ते हुए अधर्म को रोकना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसा विचार कर ऋषियों को आश्वासन देते हुए श्रीरामचन्द्र जी चित्रकूट से चल दिये। चल कर अत्रिमुनि के आश्रम में पहुँचे। अत्रि मुनि ने उनका आदर सत्कार और पूजा की। अत्रिमुनि की स्त्री सती अनुसूया से मिलकर सीता जी बहुत प्रसन्न

हुई। अनुसूया जी ने सीता जी को स्त्री-धर्मों की बड़ी सुन्दर शिक्षा दी। एक दिन वहाँ रहकर श्रीरामचन्द्रजी जब और आगे जंगल की ओर बढ़े तो उन्होंने एक स्थान पर बहुत सी हड्डियों का एक बड़ा ढेर देखा। ऋषि मुनियों से उस ढेर का रहस्य पूछा तो उन्होंने कहा—

जानतहू का पूछहु स्वामी, समदर्शी तुम अन्तरयामी।

आप सब जानते हैं हम और अधिक आपको क्या बतलावें। ऐसा कहकर उन्होंने इधर उधर घूमते हुए राक्षसों को दूर से दिखला दिया और कहा—इन्हीं दुष्टों से हम लोगों की यह दशा है जो आप यह अस्थि-समूह देख रहे हैं।

निशिचर निकर सकल मुनि खाये, सुनि रघुनाथ नयन जल छाये।

यह सुनकर कि राक्षसों ने ऋषि मुनियों को खाकर यह हड्डियों का ढेर जमा किया है, श्रीरामचन्द्र की आँखों में आँसू आ गये। उन्हें बड़ी अन्तर्वेदना हुई। एक दो क्षणों के बाद उन्होंने उन ऋषि मुनियों से राक्षसों के बध की प्रतिज्ञा की।

निशिचर हीन करउँ महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय जाय सुख दीन्ह॥

इसके बाद श्रीरामचन्द्र जी अगस्त्य मुनि के आश्रम में आये। अगस्त्य मुनि ने उनकी पूजा की और अपने धन्यभाग सराहे।

विराध राक्षस का बध

श्रीरामचन्द्र जी ने अगस्त्य मुनि से विदा होकर भयानक जंगल में प्रवेश किया जहाँ राक्षसों का अधिक त्रास था। वहाँ

वे बहुत दूर न गये थे कि उन्हें एक पर्वताकार राक्षस आता दिखाई दिया। उसका लम्बा चौड़ा बेडौल शरीर, धँसी हुई आँखें, चपटा चौड़ा मुँह, बड़ा पेट, लम्बी नाक, मोटा ताजा, देखने में बड़ा भयंकर लगता था शरीर में व्याघ्रचर्म और चर्बी लपेटे, मुँह बाये, गरजता हुआ आ रहा था।

रामचन्द्र जी ने उसे मारने का निश्चय किया। उसका नाम विराध था। वह श्रीरामचन्द्र जी को देखकर क्रोध करके उनकी ओर दौड़ा, परन्तु समीप आ सीता जी को देख उन्हीं को उठाकर यह कहते हुए भागा—दुष्टो! तुम कौन हो? तुम नहीं जानते इस वन में मैं ही भ्रमण करता हूँ और मुनियों का मांस खाता हूँ, याद रखो तुम्हारा रक्त पी लूंगा मेरा नाम विराध है।

अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः।
चरामि सायुधो नित्यं ऋषि मांसानि भक्षयन्॥

श्रीरामचन्द्र जी को उसके वचनों की परवाह न थी पर घबड़ाई हुई सीता जी को उसके पंजे में देख उन्होंने उसे फौरन मारना उचित समझा।

बस उन्होंने क्रोध में भर कर भयंकर बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दी और उस दुष्ट विराध राक्षस को मार डाला।

ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशितान्शरान्।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह॥

उस राक्षस के मरने से उस जङ्गल का डर जाता रहा। छोटे मोटे अन्य राक्षस अपने मुखिया का मरना सुनकर डर के

मारे वहाँ से भाग गये। वहाँ के रहने वाले तपस्वियों का दुख दूर हुआ। सब को महानन्द हुआ।

सब ऋषि मुनि रामचन्द्र जी के पास आकर इकट्ठे हुए। सब ने उनकी प्रशंसा करते हुए उनसे प्रार्थना की—महाराज! यहाँ बहुत राक्षस हैं जिन्होंने चारों ओर उत्पात मचा रखा है आप उन्हें मारकर सबको निरापद कीजिए। यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—

> विप्रकारमपाकर्तुं राक्षसैर्भवतामिदम्।
> पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम्॥

अर्थात्—राक्षस लोग जो मुनियों को दुख दे रहे हैं यही दूर करने के लिये मैं पिता जी की आज्ञा से वन में आया हूँ। आप लोग चिन्ता न करें, मैं इन दुष्टों का आप लोगों के देखते देखते नाश कर दूंगा।

इसके बाद आगे चलकर श्रीरामचन्द्र जी सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में पहुंचे और वहीं सीता लक्ष्मण सहित कुछ समय विश्राम किया। सुतीक्ष्ण के साथ धर्मचर्चा हुई।

पंचवटी में

श्री रामचन्द्र जी इसी प्रकार राक्षसों का नाश करते हुए और सीता जी तथा लक्ष्मण जी के साथ धर्मचर्चा [illegible] मुनियों के आश्रमों में घूमने लगे [illegible] आश्रम [illegible] कुछ समय निवास करते। [illegible] प्रसंग होता। वेद उपनिषद [illegible]

रह कर दूसरे आश्रम को चल देते।

क्वचिच्च चतुरो मासान्पञ्च षट् च परान्क्वचित्।
अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकं क्वचित् ॥
त्रीन्मासानष्ट मासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम्।
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै ॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा: दश।
परिसृत्य च धर्मज्ञो राघवः सह सीतया ॥

अर्थात्—भगवान राम वनों में मुनि आश्रमों में कहीं चार महीने, कहीं पाँच महीने, कहीं छ महीने, कहीं सात महीने, कहीं पन्द्रह दिन, कहीं एक महीने, कहीं तीन महीने, कहीं आठ महीने रहते हुए उन्होंने अपने दश वर्ष सुख पूर्वक व्यतीत कर दिये।

इस प्रकार दश वर्ष व्यतीत कर श्री रामचन्द्र जी ऋषियों के बतलाए हुए स्थान गोदावरी नदी के किनारे पञ्चवटी नामक स्थान में पहुंचे। वहाँ का सुन्दर रम्य, चित्त को हरने वाला रमणीक स्थान देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने कुछ काल वहीं रहने का निश्चय किया। लक्ष्मण को पर्णकुटी बनाने को कहा। पावन पर्णकुटी बन गई। भगवान वहीं वास करने लगे।

पञ्चवटी में रहते हुए श्रीरामचन्द्र जी की मित्रता गृधराज जटायु से होगई जो वहीं वन में रहता था और भगवान का भक्त था।

शूर्पणखा की नाक कान काटना

एक दिन श्रीरामचन्द्र जी अपने नित्यकर्म ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ

आदि से निवृत्त होकर सीता जी से प्राचीन इतिहासों की कथा कह रहे थे। थोड़ी दूर पर धनुषबाण धारण किये वीरासन से लक्ष्मण जी बैठे हुये थे। इसी समय एक राक्षसी वहाँ आ पहुँची। जिसकी कर्कश बोली, भयङ्कर आँखें, लाल बाल, विशाल शरीर और सूप से बड़े २ कान थे। वह आकर रामचन्द्र जी के सामने खड़ी होगई। थोड़ी देर तक श्री रामचन्द्र जी को देखती रही फिर बोली—बताओ तपस्वी वेश में तुम लोग कौन हो। यहाँ राक्षसों का वास है, ऐसे इस भयंकर वन में तुम लोग कैसे आये? जो तुम्हारा अभिप्राय हो मुझसे कहो।

श्रीरामचन्द्रजी ने सरल चित्त से अपने आने का वृत्तान्त उसे सुना दिया। इसके बाद पूछा—तुम कौन हो, कहाँ रहती हो, इस प्रकार वन में अकेली क्यों घूम रही हो?

राक्षसी ने उत्तर दिया—तुमने रावण का नाम तो अवश्य ही सुना होगा वह इस समय लंका का राजा है और उसने अपने प्रबल पराक्रम से सबको अपने वश में कर रखा है। मैं उसी रावण की बहन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं इस वन में स्वच्छन्द रहती हूँ। मैं तरह तरह के रूप धारण कर लेती हूँ। मेरे भय से यहाँ के आस पास के सब वनवासी काँपते रहते हैं। मैं इस समय तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम्हें नहीं खाऊँगी परन्तु तुम मुझसे अपना विवाह कर लो।

श्रीरामचन्द्रजी ने मुसकराते हुए कहा—शूर्पणखा! तुम जानती हो मैं व्याहता पुरुष हूँ, मेरी स्त्री मेरे साथ है। एक स्त्री

के होते हुए दूसरा ब्याह करना अनुचित है, अधर्म है।

शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई। उनसे भी इसी प्रकार वचन बोली लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—मैं तो श्रीराम का दास हूँ। दास की स्त्री बनने में तुम्हें क्या सुख मिलेगा इसलिये तुम मेरे पास से जाओ।

अब तो शूर्पणखा बहुत क्रोध में भर गई और रामचन्द्रजी के पास आकर उनसे यह कहते हुए सीताजी को खाने दौड़ी—तुम ऐसे नहीं मानोगे लो मैं पहले इसे खाये लेती हूँ।

जब श्रीराम ने देखा कि यह सीता को खाही जाना चाहती है तो वे क्रोध पूर्वक लक्ष्मण से बोले—भैया यह अनर्थ करना चाहती है, अब तरह देना ठीक नहीं। इस राक्षसी को सजा देना ही चाहिये। यह सुनते ही लक्ष्मणजी ने तलवार निकाल कर शूर्पणखा के नाक कान काट लिये। वह महाभयंकर प्रथ्वी पर रक्त की धारा बहाती हुई रोती चिल्लाती गरजती और क्रोध से दाँत पीसती हुई अपने भाई खर के पास पहुँची और उससे सब हाल कहकर जमीन पर दहाड़ मारती हुई गिर पड़ी।

खर दूषण का वध

राक्षस राज खर को अपनी बहन की यह हालत देख कर बड़ा क्रोध आया। उसने अपने चौदह राक्षसों को श्रीराम लक्ष्मण के मारने के लिए भेजा। इधर श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा—प्रिय लक्ष्मण! यह बहुत अच्छा हुआ। अब राक्षसों को इधर उधर ढूँढ़ना न पड़ेगा सब आप से आप यहीं आजा-

येंगे। सब को यहीं समाप्त कर ऋषि मुनियों का दुख दूर करूँगा। तुम केवल सावधानी से सीता की रक्षा करना। वन के शेष तीन चार वर्ष राक्षसों के विनाश में ही लगाने हैं।

इस तरह श्रीरामचन्द्र जी कह ही रहे थे कि उन्हें दूर पर राक्षसों का एक गिरोह आता दिखलाई दिया। श्रीराम धनुष बाण संभालकर तैयार हो गये और पास आने पर उनसे बोले—

युष्मान्पापात्मकान्हन्तुं विप्रकारान्महाहवे।
ऋषीणां तु नियोगेन संप्राप्तः स शरासनः॥

अर्थात्—तुम लोगों ने ऋषियों का बड़ा अपकार किया है इस लिए मैं तुम लोगों को मारने के लिये धनुष बाण लेकर आया हूँ।

वहाँ भयंकर राक्षस क्रोध में भर कर युद्ध करने लगे। सब एक साथ श्रीराम पर बाण छोड़ने लगे पर श्रीराम ने सब को काट गिराया और राक्षसों को भी धराशायी कर दिया।

खर ने अपने चौदह राक्षसों का मरना सुनकर सेनापति दूषण को बुलाकर चौदह हजार राक्षसों को साथ लेजाकर श्रीराम को मार डालने की आज्ञा दी। सभी राक्षस घनघोर शब्द करते हुए, सारे वन को अपनी भयंकर गर्जना से कँपाते हुए श्रीराम के सामने पहुँचे।

वनके ऋषि मुनि यह हाल सुनकर वहाँ जमा हुए और सोचने लगे—इन इतने राक्षसों से अकेले धर्मात्मा राम कैसे लड़ेंगे! क्या उपाय करना चाहिये? किन्तु इसी समय में श्रीराम का भयंकर अद्भुत रूप देखकर अचरज में आ गये।

आविष्ट तेजसा रामं संग्राम शिरसि स्थितम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद् विव्यथिरे तदा ॥
रूपमप्रतिमं तस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ॥

अर्थात्—तेज से भरे हुए राम को युद्ध में खड़े देख सब लोग भयभीत हो गये । जो राम अभी अभी बहुत सरल मालूम होते थे अब वही अद्भुत क्रुद्ध रुद्र रूप हो गये ।

क्रोध माहारयत्तीव्रं वधार्थं सर्व रक्षसाम् ।
दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवद् क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥

अर्थात्—राक्षसों के वध के लिये उन्होंने ऐसा महान् क्रोध किया कि वह महाप्रलय की अग्नि के समान भयंकर हो गया, उस रूप का देखना कठिन हो गया ।

राक्षसों ने चारों ओर से श्रीराम को घेर लिया और उनपर भयंकर बाण वर्षा करने लगे पर श्रीराम ने देखते देखते थोड़ी देर में सब को इस प्रकार मार कर छिन्न भिन्न कर दिया जैसे बादलों को सूर्य । श्री रामचन्द्र जी की तीक्ष्ण मार से तमाम राक्षस धराशायी दिखाई देने लगे ।

खर ने इस प्रकार अपनी सेना का दूषण सहित नाश सुनकर उस वन के तथा आस पास वन के तमाम राक्षसों को बटोर कर विकट चढ़ाई की । वह क्रोध में उतावला होकर अपार सेना सहित श्रीरामचन्द्र पर टूट पड़ा । पर थोड़ी देर के भयंकर युद्ध में वह भी मारा गया और बेशुमार राक्षस भी मारे गये ।

राम राम करि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारेउ, छन महँ कृपानिधान॥
हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिधि बिमान॥

सीता हरण

राक्षस रहित वन को देखकर शूर्पणखा क्रोध में भरी हुई लंका पहुँची। वहाँ उसने भाई रावण से सब हाल कहा। रावण क्रोध में भर गया। उसने कहा—शूर्पणखा! धैर्य धरो। मनुष्य मात्र एक तो वैसे ही मेरा वैरी है, फिर तुम्हारा अनिष्ट करके कौन अपनी खैर मना सकता है। पहले तो तुम्हारे अपमान का मैं यही बदला लेता हूँ कि मैं राम की औरत को पकड़ लाता हूँ।

ऐसा कहकर रावण ने मायावी मारीच को बुलाया और उससे कहा—तुम अपनी माया से सुवर्ण मृग का रूप धरो और पंचवटी में राम के आश्रम के आगे जाकर विचरो। जब राम तुम्हें मारने के लिये आवें तो तुम उन्हें दूर भगा ले जाना। मैं उसी समय सीता को उठा लाऊँगा।

मारीच यह सुनकर डर गया। वह बोला—राम को साधारण मनुष्य न समझो। उनसे उलझने में कल्याण नहीं। वे अवतार हैं, तुम्हारा नाश कर देंगे इसलिये खामोश अपने घर बैठो। यह सुन रावण क्रोध से मारीच को ही मारने को तयार हो गया।

प्राणों पर संकट देखकर मारीच ने रावण की बात माननी

पड़ी। वह माया मृग बन कर पञ्चवटी जाकर श्रीराम के आगे घूमने लगा। सीता ने सुन्दर मृग देखकर श्रीराम से उसके मारने का आग्रह किया। रामचन्द्र धनुप बाण लेकर उसके पीछे दौड़े। वह श्रीराम को बहुत दूर भगा ले गया। श्रीराम ने एक बाण तान कर मारा। उसके लगते ही वह "हा लक्ष्मण" चिल्लाता हुआ गिर कर मर गया। सीताजी ने "हा लक्ष्मण" सुनकर यह समझा कि स्वामी पर विपत्ति आई। उन्होंने लक्ष्मण को श्रीराम के पास भेज दिया।

अब कुटी में सीता को अकेली देख रावण भिखारी का वेश रखकर सीता के पास आया और उनको जबर्दस्ती उठाकर ले भागा। सीता रोती बिलखती रावण के साथ चली। सीता का चीत्कार सुनकर जटायु आकर रावण से लड़ा पर रावण ने उसे अधमरा करके डाल दिया। सीता को लंका लेजाकर उसने अशोक वाटिका में रखा और कई राक्षसियाँ उनके पहरे पर रख दीं।

कबन्ध वध

श्रीरामचन्द्र मारीच को मारकर लौट रहे थे। मार्ग में लक्ष्मण मिले। सब हाल मालूम हुआ। वे शंकित चित्त से कुटी की ओर लपके। आकर देखा तो कुटी में सीता नदारत थीं। मनुष्य चरित्र दिखानेवाले श्रीराम सीता को न पाकर तरह तरह से विलाप करने लगे। लक्ष्मण भी दुख से व्याकुल हो उठे। फिर दोनों भाई सीता की खोज में जंगलों में भटकने लगे। रास्ते में

उन्हें घायल जटायु मिला। वह सीता हरण का सब हाल सुना कर मरगया। श्रीराम ने अपने हाथ से उसकी क्रिया की फिर आगे बढ़े। एक भयानक जंगल में जब वे जा रहे थे तो एक भयानक विकराल घोर शब्द करती हुई राक्षसी उनके सामने आ गई और लक्ष्मण से चिपटने लगी। लक्ष्मण ने, क्रोध में भरकर उसके भी नाक कान काट लिये। आगे चलने पर उन्हें घोर गर्जन सुनाई दिया। एक क्षण बाद ही एक विशाल काय राक्षस सामने आगया। वह दोनों भाइयों का रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। यह कबन्ध राक्षस था। उसने राम लक्ष्मण को उठा लिया और उनके शरीरों को जोर से दबाता हुआ चल दिया। अपने को कष्ट में देखकर राक्षस का एक हाथ श्रीराम और एक लक्ष्मण ने उमेठना शुरू किया। राक्षस चिल्लाने लगा पर उन्होंने उसे तब तक न छोड़ा जब तक वह मर न गया।

भिल्लनी के बेर

आगे बढ़ने पर श्रीराम को एक निर्मल सरोवर के पास एक बड़ा ही रमणीक आश्रम मिला। श्रीराम ने वहाँ जाकर देखा एक बुढ़िया बैठी भजन कर रही थी। वह श्रीराम को देखकर खड़ी होगई और उसने उनका नाम पूछा। राम लक्ष्मण का नाम सुनते ही वह प्रेम से पुलकायमान गद्‌गद शरीर हो आँखों में आँसू भरकर उनके चरणों पर गिर पड़ी।

तौ दृष्ट्वा तु तदासिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥

वह भगवान के दर्शन से बहुत प्रसन्न थी। उसने उनके दर्शन की तयारी बहुत पहले की थी। वह जात की भीलनी शूद्रा थी परन्तु भगवान का प्रेम उसके रोम रोम में समाया हुआ था। वह भक्ति रस से परिपूर्ण थी। उसने भगवान के भोजन के लिए बहुत पहले से अपने आश्रम के निकट बेरियों के बेर चख चख कर और मीठे छाँट छाँट कर रखे थे। उसे भगवान के प्रेम में यह भी सुधबुध न थी कि मेरी क्या जात है, मैं किसे क्या रख रही हूँ और वह भी जुठार कर। ठीक है—"जात पाँत पूंछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई"।

वह भगवान राम के चरणों में गिरी, राम ने उसे उठाया। वह दौड़ी दौड़ी गई, आसन लाकर बिछा दिया। पानी ले आई, पंखा ले आई और ले आई धो पोंछ कर रखे हुए मीठे मीठे बेर! भगवान राम हाथ पैर धोकर आसन पर बैठ गये, बेर उठा उठा कर खाने लगे। शबरी उनपर पंखा करने लगी। भगवान प्रत्येक बेर की बार बार सराहना करते थे। शबरी प्रेमाश्रु बहाती हुई बावली सी उनकी ओर देख रही थी, कभी कभी धोती की कोर से आँसू पोंछ लेती थी। अपूर्व दृश्य था। जब भगवान खा पी कर पूर्ण स्वस्थ होगये तो भगवान के प्रेम की बावली शबरी हाथ जोड़ कर बोली—स्वामी!

केहि विधि अस्तुति करउँ तुम्हारी, अधम जाति मैं जड़ मति भारी।
अधम ते अधम अधम अति भारी, तिन महँ मैं मति मन्द गँवारी॥

भगवान राम ने शबरी के प्रेम भक्ति रस-पूर्ण वचनों को

सुनकर उत्तर दिया और साथही जगत को शिक्षा दी।

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता, मानउँ एक भक्ति कर नाता।
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई, धन बल परिजन गुण चतुराई।
भक्ति हीन नर सोहैं कैसे, बिनुजल बारिद देखिय जैसे।

अहंमानी, शूद्रों को दुरदुरानेवाले और भगवान की भक्ति तथा दर्शन से उन्हें वंचित करनेवाले वैष्णव जनों को भगवान के इस पुनीत चरित्र की ओर ध्यान देना चाहिये।

सुग्रीव से मित्रता

पम्पासर से आगे चल कर श्रीरामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। ऋष्यमूक पर्वत पर वानर जाति का राजा सुग्रीव रहता था। सुग्रीव का एक भाई बाली था। बाली बड़ा बलवान था, उसके सामने जो लड़ने आता था उसका आधा बल खिंच कर बाली में चला जाता था। बाली ने भी बड़ा अधर्म किया था। उसने सुग्रीव को मार कर भगा दिया था और उसका राज्य तथा स्त्री छीन ली थी। सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा थी पर अब वह बाली के डर से ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। महाबली हनुमान उसका मंत्री या अभिन्न साथी था, हनुमान और बहुत से वानर जाति के लोग सुग्रीव के साथ रहते थे। सुग्रीव ने दूर से ही धनुषबाण लिये दो तपस्वियों को आते देख यह समझा कि इन लोगों को शायद बाली ने मुझे मारने के लिये भेजा है। इसलिये उसने हनुमान को भेद लेने के लिये भेजा।

हनुमान जाकर श्रीराम से मिले। बातचीत हुई। हनुमान भगवान का चरित्र सुन उनके पैरों में गिर पड़े। फिर सुग्रीव से मित्रता कराने के लिए श्रीराम लक्ष्मण को वे अपने कन्धों पर बैठाकर सुग्रीव के पास ले आये। सुग्रीव ने अपनी दुख गाथा और बाली की ज्यादती श्रीराम को सुनाई। श्रीराम ने कहा—मैं इसी ज्यादती को मिटाने के लिये घूम रहा हूँ। फिर श्रीराम और सुग्रीव ने अग्नि को साक्षी करके मित्रता की शपथ ली।

बाली वध

श्रीराम ने सुग्रीव से कहा—तुम बाली से युद्ध करो, जब बाली से हारने लगोगे तो मैं बाली को मार दूँगा। सुग्रीव ने ऐसा ही किया। वह बाली से जाकर लड़ा। यद्यपि बाली की स्त्री ने बाली को समझाया कि अब सुग्रीव से तुम न लड़ो, नहीं तो मारे जाओगे क्योंकि वह भगवान की सहायता लेकर लड़ने आया है।

रामः परबला मर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवास वृक्षः साधूनामापन्नानां परां गतिः॥
आर्त्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैक भाजनम्।
ज्ञान विज्ञान सम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥

अर्थात् श्रीराम दुश्मनों को नाश करने में प्रलय की आग के समान हैं। दुखियों और साधुओं के रक्षक तथा आश्रय दाता हैं। वे दीनों के आश्रय, यशस्वी, ज्ञान विज्ञान से युक्त और

पिता की आज्ञा के पालक हैं। उनसे न लड़ो। पर बाली ने एक न मानी, वह सुग्रीव से लड़ा। जब श्रीराम ने सुग्रीव को हारते देखा तो बाली को मार गिराया। बाली को मार कर सुग्रीव का राज्य और स्त्री सुग्रीव को दिलादी और धर्मात्मा बाली के पुत्र अंगद को युवराज बना दिया। बाली ने मरते समय श्रीराम से कहा—

तुमसे मेरी कोई दुश्मनी न थी। तुमने मुझे अधर्म से मारा? श्रीराम ने उत्तर दिया—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ ! ये कन्या सम चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकहि जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई॥

श्रीराम के उपदेश से बाली को ज्ञान उत्पन्न हो गया और उसने श्रीराम में अपनी भक्ति अर्पण करते हुए शरीर त्याग दिया।

सीता की खोज और लंका दहन

अब सुग्रीव ने अपने तमाम बानरों को सीताजी की खोज में चारों ओर भेज दिया। हनुमान जी लङ्का की ओर गये। समुद्र को तैर कर वे लङ्का में पहुँचे। रावण के कुल महलों को अच्छी तरह खोजा, कहीं सीता का पता न चला। इसी समय उनकी भेंट विभीषण से हो गई। विभीषण रावण का छोटा भाई था परन्तु बड़ा धर्मात्मा, दयालु, साधु और ईश्वर भक्त था। विभीषण से मालूम हुआ कि सीता अशोक वाटिका में है। हनुमान

जिस समय अशोक वाटिका में पहुँचे तो रावण अशोक वृक्ष के नीचे उदास बैठी, राक्षसिनियों से घिरी हुई सीता को अपनी स्त्री बनने के लिये धमका रहा था, सीताजी उसे फटकार रही थीं।

रावण के चले जाने पर हनुमान ने श्रीराम की दी हुई अँगूठी पेड़ पर से सीता के आगे छोड़ दी। सीता जी उसे उठाकर आश्चर्य से देखने लगीं, तभी हनुमान सामने आगये। सब हाल कहा। सीता जी ने रावण का जुल्म और अपनी विपत कथा सुनाई। हनुमान ने कहा—आप दुखी न हों, अब श्रीराम शीघ्र आकर रावण का नाश करेंगे और आपका दुख दूर होगा।

इसके बाद हनुमान ने रावण की तमाम अशोक वाटिका उजाड़ डाली। रावण को खबर हुई, उसने पकड़ने को राक्षस भेजे। हनुमान ने उन्हें मार डाला। तब रावण ने अपने छोटे पुत्र अक्षय कुमार को भेजा। हनुमान ने उसे भी मार डाला। रावण ने क्रोध में भर कर बड़े पुत्र मेघनाद को भेजा। वह हनुमान को पकड़ कर रावण के सामने ले गया। रावण ने पहले तो उसे मार डालने का हुक्म दिया। फिर विभीषण के समझाने से यह कह कर छोड़ दिया कि इसकी पूंछ में आग लगा दो। हनुमान की पूंछ में आग लगा दी गई। हनुमान ने अपनी आग लगी हुई पूंछ से लंका भर में आग लगा दी और आप समुद्र में कूद, पूँछ बुझा श्रीराम के पास लौट आये। लंका जलकर बरबाद हो गई। उसकी सुन्दरता नष्ट हो गई।

राक्षसों का नाश

हनुमान से सीता का समाचार पाकर श्रीरामचन्द्र जी ने रावण से युद्ध करने का निश्चय किया। वानरों की अपार सेना के साथ वे लंका की ओर चल दिये। समुद्र के किनारे पहुँच कर सब ने डेरा डाल दिया। वानरों में नल नील नाम के जो दो वानर अत्यन्त चतुर शिल्पी थे उन्हें श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँधने की आज्ञा दी।

नल नील ने समुद्र पर पुल बाँध दिया। वानर-कटक किलकारी देती हुई समुद्र पार होने लगी। कुछ ही काल में लंका के किनारे जाकर डेरे पड़ गये। श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जामवन्त, द्विविद, गयंद, नल, नील आदि महारथी वानरों को बुलाकर मंत्रणा की और कहा—एक बार जाकर रावण को फिर समझाना चाहिए, वह अत्याचार छोड़ दे। राक्षस-वृत्ति को छोड़ साधु बन जाय और सीता को लौटा दे।

सब की सलाह से अंगद दूत बनकर रावण को समझाने गये। रावण की राजसभा में जाकर उन्होंने उसे बहुत कुछ समझाया। श्रीरामचन्द्र जी के प्रभाव को बतलाया। पर उसकी समझ में कुछ भी न आया। वह बोला—मैं दुनियाँ का एक मात्र पराक्रमी राजा, मेरे यहाँ इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, यम, वायु देव, यक्ष, किन्नर पानी भरते हैं। मैं तपस्वी छोकड़ों से मन

डरने वाला हूँ ! अंगद ने उत्तर दिया—दुष्ट राक्षस ! यह तेरी विपरीत बुद्धि का फल है । कि—

बधि विराध खर दूषणहिं, लीलहिं हतेउ कबन्ध ।
बालि एक शर मारेऊ, तेहि नर कह दशकन्ध ॥

रावण जब किसी प्रकार न माना तो अंगद लौट आये । विभीषण के समझाने पर रावण ने उसे भी लात मार कर लंका से निकल जाने को कहा । विभीषण आकर श्रीरामचन्द्र जी की शरण में हो गया । युद्ध के डंके बजा दिये गये ।

श्रीराम को युद्ध के लिये उद्यत देखकर रावण ने भी अपनी अपार राक्षसी सेना को युद्ध के लिए आज्ञा देदी । देखते-देखते मैदान वीरों से भर गया । अपने अपने समान योद्धा एक दूसरे से भिड़ गये । गदा से गदा टकराने लगी । भालों की नोकों से नोकें लड़ने लगीं । तलवारें लपलपाने लगीं । बाणों से आकाश व्याप्त होने लगा ।

रावण की राक्षसी सेना का नाश होने लगा । रावण ने अपनी सेना का नाश होते देख कर अपने पुत्र मेघनाद को युद्ध के लिये भेजा । उसने आकर बड़ी प्रबलता से युद्ध किया लक्ष्मण जी का और उसका सामना हुआ । उसने लक्ष्मण को बेहोश कर दिया । लक्ष्मण को बेहोश देखकर श्रीराम ने लंका के प्रसिद्ध वैद्य सुखेन को बुलवाया । उन्होंने पर्वत से संजीवनी बूटी मंगाने को कहा । हनुमान संजीवनी लेने गये । श्रीराम ने भ्रातृप्रेम की शिक्षा संसार को देते हुए भाई के लिये विलाप किया । भ्रातृ प्रेम को उन्होंने

राक्षसों का नाश

हनुमान से सीता का समाचार पाकर श्रीरामचन्द्र जी ने रावण से युद्ध करने का निश्चय किया। वानरों की अपार सेना के साथ वे लंका की ओर चल दिये। समुद्र के किनारे पहुँच कर सब ने डेरा डाल दिया। वानरों में नल नील नाम के जो दो वानर अत्यन्त चतुर शिल्पी थे उन्हें श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँधने की आज्ञा दी।

नल नील ने समुद्र पर पुल बाँध दिया। वानर-कटक किलकारी देती हुई समुद्र पार होने लगी। कुछ ही काल में लंका के किनारे जाकर डेरे पड़ गये। श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव, अंगद, हनुमान, जामवन्त, द्विविद, मयंद, नल, नील आदि महारथी वानरों को बुलाकर मंत्रणा की और कहा—एक बार जाकर रावण को फिर समझाना चाहिए, वह अत्याचार छोड़ दे। राक्षस-वृत्ति को छोड़ साधु बन जाय और सीता को लौटा दे।

सब की सलाह से अंगद दूत बनकर रावण को समझाने गये। रावण की राजसभा में जाकर उन्होंने उसे बहुत कुछ समझाया। श्रीरामचन्द्र जी के प्रभाव को बतलाया। पर उसकी समझ में कुछ भी न आया। वह बोला—मैं दुनियाँ का एक मात्र पराक्रमी राजा, मेरे यहाँ इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, यम, वायु, देव, यक्ष, किन्नर पानी भरते हैं। मैं तपस्वी छोकड़ों से भला

को चिन्ता हुई। उसने कहा—महाराज! आप बिना रथ के रावण से कैसे युद्ध करेंगे? श्रीराम जी ने उसे समझाया—

रावण रथी विरथ रघुवीरा, देखि विभीषण भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति उर भा सन्देहा, बन्दि चरण कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ पद नहिं पदत्राना, केहि विधि जितब वीर बलवाना?
सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीर जाहि रथ चाका, सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा दया समता रजु जोरे।
ईस भजन सारथी सुजाना, विरति चर्म सन्तोष कृपाना।
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा, वर विज्ञान कठिन कोदंडा।
संयम नियम शिलीमुख नाना, अमल अचल मन त्रोण समाना।
कवच अभेद विप्र पद पूजा, यहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्म मय अस रथ जाके, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु, जीति सकै सो वीर।
जाके अस रथ होय दृढ़, सुनहु सखा मति धीर॥

अर्थात्—हे विभीषण! जिस रथ के द्वारा विजय होती है वह मेरे पास है। सुनो वह रथ कैसा है। धैर्य और वीरता जिसके पहिए हैं, सचाई और उत्तम स्वभाव की जिस पर मजबूत पताका है।

विरथ=रथ रहित। पदत्राना=जूते। स्यंदन=रथ। शील=स्वभाव। सौरज=शौर्य। चाका=पहिया। रजु=रस्सी। विरति=वैराग्य। चर्म=म्यान। कोदंडा=धनुष। शिलीमुख=बाण। त्रोण=तरकस।

संसार में सर्वोच्च ठहराया। उन्होंने कहा—

सुत पितु नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस विचारि जिय जागहु ताता, मिलहि न जगत सहोदर भ्राता।

हनुमान संजीवनी ले आये। लक्ष्मण को संजीवनी पिला गई, वे स्वस्थ होकर उठ बैठे। युद्ध और जोरों से होने लगा।

एक दिन कुंभकर्ण लड़ने आया। उसे देखकर वानर-दल में खलबली मच गई। उसने हजारों वानरों को बात की बात में पीस डाला। अन्त में श्रीरामचन्द्र जी से उसकी मुठभेड़ हुई। श्रीराम ने खेला खेला कर उसे खतम कर दिया। तब रावण ने क्रोध में भर कर फिर मेघनाद को भेजा। परन्तु अब की बार मेघनाद की एक न चली। लक्ष्मण पहले से ही उस पर तुले बैठे थे। दोनों का भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में लक्ष्मण ने उसे धराशायी कर ही दिया।

जब रावण ने देखा कि मेरा भाई मारा गया, मेरे लड़के मारे गये, मेरी सेना तहस नहस कर दी गई, राक्षस कुल का संहार हो गया तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह रथ पर सवार हो दाँत पीसता हुआ स्वयं युद्ध के लिये आया। उसका उग्ररूप देख कर सब डर गये और इधर उधर भागने लगे। यह दृश्य देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने सब को समझाया और धैर्य बंधाया कि डरो नहीं, मैं इसका अभी नाश करूँगा।

ऐसा कहकर भगवान धनुष बाण ले उसके सामने आये। रावण को रथी और श्रीरामचन्द्र को रथ रहित देखकर विभीषण

राम-राज्य

अयोध्या आकर श्रीरामचन्द्र जी सब से मिले। किसी की खुशी का ठिकाना न था। मानो सब को अपनी गई निधि मिली।

सुमन वृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़े अटारिन्ह देखहीं, नगर नारि नर वृन्द॥

श्रीराम लक्ष्मण और सीता ने वल्कल वस्त्र उतारे। जटाएँ काटी गईं। भरत ने राम की थाती राम को सौंपने का संकल्प किया।

राज्याभिषेक की तयारी होने लगी। ऋषि, मुनि, यती, तपस्वी, तथा राजे महाराजे जमा हुए। अच्छे समय में श्रीरामचन्द्र जी का राज्य तिलक हुआ, वे सीता सहित राज सिंहासन पर विराजमान हुए। देवताओं ने आकाश से फूल बरसाए और श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति की।

श्रीरामचन्द्रजी ने संसार के सामने एक आदर्श राज्य की मिसाल पेश की। श्रीराम ने अवतार लेकर अधर्म का नाश किया, धर्म की रक्षा की, लोक मर्यादा स्थित की। उन्होंने बताया—मनुष्य को स्वयं कैसा होना चाहिए। उसका दूसरों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए। गृह कुटुम्ब का, भाई भाई का, पिता पुत्र का, मां बेटे का, पति पत्नी का, सेवक स्वामी का, मित्र मित्र का, ऊँच नीच का, छोटे बड़े का और राजा प्रजा का परस्पर कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। किन गुणों से मनुष्य की विजय

बल, ज्ञान, इन्द्रिय वशता और दूसरे की भलाई करना रूपी चार घोड़े जिसमें जुते हैं। जिनकी क्षमा, दया, बराबरी का भाव रूपी लगामें हैं। भजन रूपी सारथी जिसका हाँकने वाला है। जिस रथ के सवार के पास वैराग्य रूपी म्यान और सन्तोष रूपी तलवार है, दान रूपी फरसा और बुद्धि रूपी शक्ति है, विज्ञान रूपी धनुष और संयम नियम रूपी बाण हैं। जो निर्मल स्थिर चित्त रूपी तरकस में रखे हैं, जो विप्रपूजा रूपी अभेद्य कवच पहने है उसे दूसरे रथ की जरूरत नहीं है। वह संसार के बड़े से बड़े दुश्मन तक को जीत सकता है।

फिर क्या था। राम रावण का युद्ध छिड़ गया। कुछ समय तक देखने वाले एक टक रह गये, प्रलय काल का सा दृश्य उपस्थित हो गया। महा विकट लड़ाई हुई। अन्त में श्रीराम ने रावण को मार गिराया। रामदल में विजय के नगाड़े बजने लगे। जो राक्षस बच गये थे उन्होंने अपनी राक्षस वृत्ति छोड़ कर साधु वृत्ति धारण करने की प्रतिज्ञा की। शेष राक्षसों का नाश हो गया। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया।

भगवान ने लंका का राज्य तिलक विभीषण को कर दिया। सीता जी आकर श्रीरामचन्द्र जी से मिलीं। चारों ओर जय जय कार मनाई गई। श्रीरामचन्द्र जी सीता लक्ष्मण और मुख्य २ वानरों आदि सहित पुष्पक विमान पर बैठ कर अयोध्या को चल दिये क्योंकि अब बनवास की १४ वर्ष की अवधि भी समाप्त हो रही थी।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

और अभ्युदय होता है किनसे पराजय और पतन होता है।

यदि श्रीराम का अवतार न होता तो इतने उज्ज्वल और स्पष्ट रूप में ये आदर्श संसार के सामने न आ सकते।

रामराज्य के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने क्या ही सुन्दर वर्णन किया है:—

राम राज्य बैठे त्रयलोका। हरपित भयउ गयउ सब शोका।
बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विपमता खोई॥
वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं सुधर्म निरत-श्रुति नीती॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम-भक्ति-रति नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब निरुज शरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत धनी। नर अरु नारि चतुर शुभ गुनी॥
सब गुणज्ञ सब पण्डित ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥
रामराज्य विहगेश सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहि नाहिं॥

॥ समाप्त ॥

मुद्रक—बाबू शारदाप्रसाद खरे, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

श्रीहरिः

प्रार्थना

उपनिषद् हमारी वह अमूल्य निधि है, जिसमें संरक्षित विविध ज्ञानविज्ञानमयी अचिन्त्य रत्नराशिकी निर्मल सच्चिदानन्दमयी ज्योतिका एक कण प्राप्त करनेके लिये समस्त संसारके तत्त्वज्ञ श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये और हाथ पसारे खड़े हैं। उपनिषदोंमें उस कल्याणमय ज्ञानका अखण्ड और अनन्त प्रकाश है जो घोर क्लेशमयी और अन्धकारमयी भवाटवीमें भ्रमते हुए जीवको सहसा उससे निकालकर नित्य निर्बाध ज्योतिर्मयी और पूर्णानन्दमयी ब्रह्मसत्तामें पहुँचा देता है। आनन्दकी बात है कि आज उन्हीं उपनिषदोंसे चुनी हुई कुछ कथाएँ पाठकोंको भेंट की जा रही हैं। लगभग दस वर्ष पूर्व बम्बईमें 'उपनिषदोनी बातो' नामक एक गुजराती पुस्तक देखी थी, तभी हिन्दीमें भी वैसी ही कथाएँ लिखनेका मन हुआ था। और उसी समय कुछ कथाएँ लिखी गयी थीं। उनमेंसे कुछ तो बिल्कुल गुजरातीकी शैलीपर ही थी और कुछ अन्य प्रकारसे। वे ही कथाएँ अब पाठकोंको पुस्तकरूपमें मिल रही हैं। इसके लिये गुजराती पुस्तकके लेखक और प्रकाशक महोदयका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ। इस छोटी-सी पुस्तकसे हिन्दीके पाठकोंने यदि लाभ उठाया तो सम्भव है आगे चलकर उपनिषदोंकी ऐसी ही चुनी हुई अन्यान्य कथाओंके प्रकाशनकी भी चेष्टा की जाय। भूलचूकके लिये विद्वान् पाठक क्षमा करें और कृपापूर्वक सूचना दे दें। जिससे यदि नया संस्करण हो तो उस समय उचित सुधार कर दिया जाय। आशा है पाठक इस प्रार्थनापर ध्यान देंगे।

विनीत

हनुमानप्रसाद पोद्दार

'सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।'

(तैत्तिरीय उप० १।११।१)

'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।' (तैत्ति० उप० १।११।२)

सं० १९९२ प्रथम संस्करण ३२५०
सं० १९९३ द्वितीय संस्करण ५०००

मूल्य ।=) छः आना

मुद्रक तथा प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर।

श्रीहरिः

विषय-सूची

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

(तैत्तिरीय उप० २ । १ । १)

श्रीहरिः

उपनिषदोंके

चौदह रत्न

(१)

ब्रह्म ही विजयी है

एक समय स्वर्गके देवताओंने परमात्माके प्रतापसे असुरोंपर विजय प्राप्त की । इस विजयसे लोगोंमें देवताओंकी पूजा होने लगी । देवोंकी कीर्ति और महिमा सब तरफ छा गयी । विजयोन्मत्त देवता भगवान्को भूल-कर कहने लगे कि हमारी ही जय हुई है । हमने अपने पराक्रम

श्रीहरिः

चित्र-सूची

'तू कौन है ?' अग्निने कहा—'मेरा नाम प्रसिद्ध है, मुझे अग्नि कहते हैं और जातवेदस् भी कहते हैं ।' ब्रह्मने फिर पूछा—'यह सब तो ठीक है; परन्तु हे अग्नि ! तुझमें किस प्रकारका सामर्थ्य है, तू क्या कर सकता है ?' अग्निने कहा—'हे यक्ष ! इस पृथिवी और अन्तरिक्षमें जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम पदार्थ हैं उन सबको मैं जलाकर भस्म कर सकता हूँ ।'

ब्रह्मने सोचा कि इसका अहङ्कार बातोंसे नहीं दूर होगा, इसको कुछ चमत्कार दिखलाना चाहिये । यों सोचकर ब्रह्मने उसमेंसे अपनी शक्ति खींच ली और **'तस्मै तृणं निदधौ'**—उसके सामने एक सूखे घासका तिनका डालकर कहा कि 'और सबको जलानेकी बात तो पीछे देखी जायगी, पहले **'एतद्दह'**—इस तृणको तू जला !'

अग्निदेवता अपने पूरे वेगसे तृणके निकट गये और उसे जलानेके लिये सर्व प्रकारसे यत्न करने लगे, परन्तु तृणको नहीं जला सके । लज्जासे उनका मस्तक नीचा हो गया और अन्तमें यक्षसे बिना कुछ कहे ही अग्निदेवता अपना-सा मुँह लिये देवताओं-के पास लौट आये और कहा कि 'मैं तो इस बातका पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है ?'

इसके बाद देवताओंने वायुसे कहा कि 'हे वायो ! तुम जाकर पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है ।' वायुदेव 'बहुत अच्छा' कहकर यक्षके पास गये; परन्तु उनकी भी अग्निकी-सी दशा हो गयी, वे बोल नहीं सके—

और बुद्धिबलसे दैत्योंका दलन किया है, इसीलिये लोग हमारी पूजा करते हैं और हमारे विजयगीत गाते हैं। मद अंधा बना देता है, देवता भी विजयमदमें अंधे होकर इस बातको भूल गये कि कोई सर्वशक्तिमान् ईश्वर है और उसीके बल और प्रभावसे सब कुछ होता है। उसकी सत्ता बिना पेड़का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

भगवान् बड़े दयालु हैं। उन्होंने देखा कि देवतागण मिथ्या अभिमानमें मत्त होकर मुझे भूलने लगे हैं, यदि इनके यह अभिमान दृढ़ हो गया तो असुरोंकी भाँति इनका भी सर्वनाश हो जायगा। विजय प्राप्त करनेपर जहाँ सत् पुरुषोंमें नम्रता आती है वहाँ इनमें अभिमान बढ़ रहा है। यों विचारकर देवताओंके अभिमान-का नाशकर उनका उपकार करनेके लिये परमात्मा ब्रह्मने अपनी लीलासे एक ऐसा अद्भुत कौतूहलप्रद रूप प्रकट किया जिसे देखकर देवताओंकी बुद्धि चक्कर खा गयी। देवता घबराये और उन्होंने इस यक्षसदृश रूपधारी अद्भुत पुरुषका पता लगानेके लिये अपने अगुआ अग्निदेवसे कहा कि 'हे जातवेदस् * ! हम सबमें आप सर्वापेक्षा अधिक तेजस्वी हैं, आप इनका पता लगाइये कि ये यक्षरूप वास्तवमें कौन हैं ?' अग्निने कहा 'ठीक है, मैं पता लगाकर आता हूँ।' यों कहकर अग्नि वहाँ गये, परन्तु उसके समीप पहुँचते ही तेजसे ऐसे चकरा गये कि बोलनेतकका साहस नहीं हुआ। अन्तमें उस यक्षरूपी ब्रह्मने अग्निसे पूछा कि

* जातवेदस्का अर्थ धनका दाता या उत्पन्न हुए समस्त पदार्थोंका ज्ञाता होता है।

'तू कौन है ?' अग्निने कहा—'मेरा नाम प्रसिद्ध है, मुझे अग्नि कहते हैं और जातवेदस् भी कहते हैं ।' ब्रह्मने फिर पूछा—'यह सब तो ठीक है; परन्तु हे अग्नि ! तुझमें किस प्रकारका सामर्थ्य है, तू क्या कर सकता है ?' अग्निने कहा—'हे यक्ष ! इस पृथिवी और अन्तरिक्षमें जो कुछ भी स्थावर-जङ्गम पदार्थ हैं उन सबको मैं जलाकर भस्म कर सकता हूँ ।'

ब्रह्मने सोचा कि इसका अहङ्कार बातोंसे नहीं दूर होगा, इसको कुछ चमत्कार दिखलाना चाहिये । यों सोचकर ब्रह्मने उसमेंसे अपनी शक्ति खींच ली और **'तस्मै तृणं निदधौ'**—उसके सामने एक सूखे घासका तिनका डालकर कहा कि 'और सबको जलानेकी बात तो पीछे देखी जायगी, पहले **'एतद्दह'**—इस तृणको तू जला !'

अग्निदेवता अपने पूरे वेगसे तृणके निकट गये और उसे जलानेके लिये सर्व प्रकारसे यत्न करने लगे, परन्तु तृणको नहीं जला सके । लज्जासे उनका मस्तक नीचा हो गया और अन्तमें यक्षसे बिना कुछ कहे ही अग्निदेवता अपना-सा मुँह लिये देवताओं-के पास लौट आये और कहा कि 'मैं तो इस बातका पता नहीं लगा सका कि यह यक्ष कौन है ?'

इसके बाद देवताओंने वायुसे कहा कि 'हे वायो ! तुम जाकर पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है ।' वायुदेव 'बहुत अच्छा' कहकर यक्षके पास गये; परन्तु उनकी भी अग्निकी-सी दशा हो गयी, वे बोल नहीं सके—

यक्षने पूछा, 'तू कौन है ?' वायुने कहा—'मैं वायु हूँ, मेरा नाम और गुण प्रसिद्ध है—मैं गमनक्रिया करनेवाला और पृथ्वीकी गन्धको वहन करनेवाला हूँ । अन्तरिक्षमें गमन करनेवाला होनेके कारण मुझे मातरिश्वा भी कहते हैं ।' यक्षने कहा—'तुझमें क्या सामर्थ्य है ?' वायुने कहा—'इस पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जो कुछ भी पदार्थ हैं उन सबको मैं ग्रहण कर सकता हूँ (उड़ा सकता हूँ) ।' ब्रह्मने वायुके सम्मुख भी वही सूखा तिनका रख दिया और कहा 'एतदादत्स्व'—इस तिनकेको उड़ा दे ।

वायुने अपना सारा बल लगा दिया, परन्तु तिनका हिला भी नहीं । यह देखकर वायुदेव बड़े लज्जित हुए और तुरन्त ही देवताओंके पास आकर उन्होंने कहा—'हे देवगण ! पता नहीं, यह यक्ष कौन है; मैं तो कुछ भी नहीं जान सका ।'

जब मुनीमोंसे काम नहीं होता तब मालिककी बारी आती है । इसी न्यायसे देवताओंने इन्द्रसे कहा कि 'हे देवराज ! अब आप जाइये ।' इन्द्र यक्षके समीप गये । देवराजको अभिमानमें भरा हुआ देखकर यक्षरूपी ब्रह्म वहाँसे अन्तर्धान हो गये, इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेके लिये उनसे बाततक नहीं की । इन्द्र लज्जित तो हो गये, परन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और ध्यान करने लगे । इतनेमें उन्होंने देखा कि अन्तरिक्षमें अत्यन्त शोभायुक्त और सब प्रकारके उत्तमोत्तम अलङ्कारोंसे विभूषित हिमवान्की कन्या

भगवती पार्वती उमा खड़ी हैं। पार्वतीके दर्शन कर इन्द्रको हर्ष हुआ और उन्होंने सोचा कि पार्वती नित्य ज्ञानबोधस्वरूप भगवान् शिवके पास रहती हैं, अतएव इन्हें यक्षका पता अवश्य ही मालूम होगा। इन्द्रने विनयभावसे उनसे पूछा—

'माता! अभी जो यक्ष हमें दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये वे कौन थे?' उमाने कहा—'वह यक्ष प्रसिद्ध ब्रह्म था। हे इन्द्र! इस ब्रह्मने ही असुरोंको पराजित किया है, तुम लोग तो केवल निमित्तमात्र हो; ब्रह्मके विजयसे ही तुम लोगोंकी महिमा बढ़ी है और इसीसे तुम्हारी पूजा भी होती है। तुम जो अपना विजय और अपनी महिमा मानते हो सो सब तुम्हारा मिथ्या अभिमान है, इसे त्याग करो और यह समझो कि जो कुछ होता है सो केवल उस ब्रह्मकी सत्तासे ही होता है।'

उमाके वचनोंसे इन्द्रकी आँखें खुल गयीं, अभिमान जाता रहा। ब्रह्मकी महान् शक्तिका परिचय पाकर इन्द्र लौटे और उन्होंने अग्नि और वायुको भी ब्रह्मका उपदेश दिया। अग्नि और वायुने भी ब्रह्मको जान लिया। इसीसे ये तीनों देवता सबसे श्रेष्ठ हुए। इनमें भी इन्द्र सबसे श्रेष्ठ माने गये। कारण, उन्होंने ब्रह्मको सबसे पहले जाना था। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मको सबसे पहले जाननेवाला ही सर्वश्रेष्ठ है।

(केन उपनिषद्के आधारपर)

(२)

अनोखा अतिथि

सत्ययुगका पवित्र काल है। देशभरमें यज्ञोंका प्रचार हो रहा है। यज्ञधूमसे और उसकी पवित्र सौरभसे आकाश भरा हुआ है। वेदके वरद मन्त्रोंसे दिशाएँ गूँजती हैं। यज्ञका हवि ग्रहण करनेके लिये स्वर्गसे देवगण पृथिवीपर उतरते हैं। पवित्र और आनन्दमयी वाद्यध्वनिसे समस्त जीव प्रफुल्लित हो रहे हैं। यज्ञकर्ता यज्ञकी

पूर्णाहुति होनेपर परम श्रद्धासे ऋत्विक्गणको दक्षिणा बाँटते हैं। आकांक्षारहित होकर सात्त्विक यज्ञकर्ता वेदविधिका पूर्णतया पालन करते हुए समस्त कार्य सम्पादन करते हैं। ऐसे पवित्र युगमें ऋषि वाजश्रवाके सुपुत्र उद्दालक मुनिने विश्वजित् नामक एक यज्ञ किया। इस यज्ञमें सर्वस्व दान करना पड़ता है। तदनुसार वाजश्रवस (वाजश्रवाके पुत्र) उद्दालकने भी **'सर्ववेदसं ददौ'**—अपना सारा धन ऋषियोंको दे दिया। ऋषि उद्दालकके नचिकेता नामक एक पुत्र था। जिस समय ऋषि ऋत्विज और सदस्योंको दक्षिणा बाँट रहे थे और उसमें अच्छी-बुरी सभी तरहकी गौएँ दी जा रही थीं उस समय बालक नचिकेताके निर्मल अन्तःकरणमें श्रद्धाने प्रवेश किया। नचिकेताने अपने मनमें सोचा—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥

(कठ० १। १। ३)

'जो गौएँ (अन्तिम बार) जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं और दूध दुहा चुकी हैं; जो शक्तिहीन अर्थात् गर्भ धारण करनेमें असमर्थ हैं, ऐसी गायोंको जो दान करता है वह उन लोकोंको प्राप्त होता है जो आनन्दसे शून्य है।'

यज्ञके बाद गौदान अवश्य होना चाहिये, परन्तु नहीं देने योग्य गौके दानसे दाताका उलटा अमङ्गल होता है। इस प्रकारकी भावनासे सरलहृदय नचिकेताके मनमें बड़ी वेदना हुई और अपना बलिदान देकर पिताका अनिष्ट निवारण करनेके लिये उसने कहा—

तत कस्मै मां दास्यसीति।

और उन्होंने पहले तीन वरोंके अतिरिक्त एक चौथा यह वर और दिया कि—

> तवैव नाम्ना भवितायमग्निः
> सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण॥
> (कठ० १।१।१६)

'मैंने जिस अग्निकी बात तुमसे कही वह तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। और तुम इस विचित्र रत्नोंवाली शब्दवती मालाको भी ग्रहण करो।' नचिकेताका तेजोदीप्त मुखमण्डल प्रसन्नतासे भर गया। यमराज फिर बोले 'जिसने यथार्थरूपसे मातापिता और आचार्यके उपदेशानुसार तीन बार नाचिकेत अग्निकी उपासना कर यज्ञ, वेदाध्ययन और दान किया है वह जन्म और मृत्युको तर जाता है और जब वह भाग्यवान् पुरुष उस अग्निको ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ, ज्ञानसम्पन्न पूजनीय देव जानता है तब वह शान्तिको प्राप्त होता है। जो नाचिकेत अग्निके स्वरूप, संख्या और आहुति देनेकी प्रणालीको जानकर उसकी उपासना करता है वह देहपातसे पहले ही मृत्युके पाशको तोड़कर और शोकरहित होकर स्वर्गमें आनन्दको प्राप्त होता है।'

नाचिकेत अग्निको स्वर्गका साधन बतलाकर और उसकी कुछ और प्रशंसा करके यमराजने नचिकेतासे कहा—'तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व'—'हे नचिकेता! अब तीसरा वर माँगो।'

अधिकारिपरीक्षा

पिताकी प्रसन्नताका वर इस लोकके लिये और स्वर्गके साधन अग्निका ज्ञान परलोकके लिये वरकर नचिकेता सोचता है कि क्या

स्वर्गसुखमें ही जीवका परम कल्याण है ? स्वर्गसे भी तो पुण्यात्माओंका पुण्य क्षय होनेपर वापिस लौटना सुना जाता है, अतएव अब तीसरे वरसे उस मृत्युतत्त्व या आत्मतत्त्वको जानना चाहिये जिसके जाननेपर और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। यों सोचकर 'आत्मा परलोकमें जाता है या नहीं, मरनेके बाद आत्माकी क्या गति होती है ?' —इस आत्मज्ञानके जटिल प्रश्नको समझनेके हेतुसे नचिकेताने यमराजसे कहा—'मृत मनुष्यके विषयमें एक संशय है। कोई कहते हैं—शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिके अतिरिक्त देहान्तरसम्बन्धी कोई अन्य आत्मा है। कोई कहते हैं—ऐसा कोई स्वतन्त्र आत्मा नहीं है। प्रत्यक्ष या अनुमानसे इस विषयका कोई निर्णय नहीं हो सकता। आप मृत्युके अधिपति देवता हैं, अतएव मैं यह आत्मतत्त्व आपसे जानना चाहता हूँ। यही तीसरा वर मैं माँगता हूँ।'

नचिकेताका महत्त्वपूर्ण प्रश्न सुनकर यमराजने सोचा—'ऋषिकुमार बालक होनेपर भी है बड़ा ही बुद्धिमान्, कैसे गोपनीय तत्त्वको जानना चाहता है। परन्तु आत्मतत्त्व उपयुक्त पात्रको ही बतलाना उचित है, अनधिकारीके समीप आत्मतत्त्व प्रकट करनेसे हितके स्थानमें प्रायः अनिष्ट ही हुआ करता है। इसलिये पहले पात्र-परीक्षाकी आवश्यकता है।' यों विचारकर यमराजने इस तत्त्वको कठिनताका बखान करके नचिकेताको टालना चाहा। यमराजने कहा—'देवताओंको भी पहले इस विषयमें सन्देह हुआ था। इस आत्मतत्त्वका समझना कोई आसान बात नहीं, यह

बड़ा ही सूक्ष्म विषय है; अतएव हे नचिकेता! तुम दूसरा वर माँगो, इस वरके लिये मुझे मत रोको।'

नचिकेता विषयकी कठिनताका नाम सुनकर घबराया नहीं, परन्तु और भी अधिक दृढ़तासे कहने लगा—'हे मृत्यो! पूर्वकालमें देवताओंको भी जब इस विषयमें सन्देह हुआ था और जब आप भी कहते हैं कि यह विषय आसान नहीं है, तब मुझे इस विषयका समझानेवाला आपके समान दूसरा वक्ता ढूँढ़नेपर भी कोई नहीं मिल सकता। आप किसी दूसरे वरके लिये कहते हैं; परन्तु मैं समझता हूँ कि इसकी तुलनाका और कोई वर नहीं है, क्योंकि यही कल्याणकी प्राप्तिका हेतु है। अतएव मुझे यही समझाइये!'

किसी विषयको जब नहीं बतलाना होता है तो सबसे पहले उसकी कठिनताका भय दिखलाया जाता है। यमराजने भी परीक्षाके लिये यही किया, परन्तु नचिकेता इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया। अबकी बार यमराजने और भी कठिन परीक्षा लेनी चाही। साधककी परीक्षाके लिये दो ही प्रधान शस्त्र होते हैं—एक 'भय' और दूसरा 'लोभ'। नचिकेता भयसे नहीं डिगा, इसलिये अब यमराजने दूसरे शस्त्र लोभका प्रयोग उसपर किया। यमराजने कहा—

'बालक! तुम क्या करोगे ऐसे वरको लेकर! तुम ग्रहण करो इन सुखकी विशाल सामग्रियोंको'—

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।

भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥
(कठ० १।१।२३)

'सौ-सौ वर्ष जीनेवाले पुत्र-पौत्र माँगो, गौ आदि बहुत-से पशु, हाथी, सुवर्ण, घोड़े और विशाल भूमण्डलका राज्य माँगो और इन सबको भोगनेके लिये जितने वर्ष जीनेकी इच्छा हो उतने ही वर्ष जीते रहो।' इतना ही नहीं,—

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥
(कठ० १।१।२४)

'इसीके समान और कोई वर चाहो तो उसे, और प्रचुर धनके साथ दीर्घजीवन माँग लो; अधिक क्या इस विशाल भूमिके तुम सम्राट् बन जाओ। मैं तुम्हें अपनी सारी कामनाओंका इच्छानुसार भोगनेवाला बनाये देता हूँ।' इसके सिवा—

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान्कामाꣳश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥
(कठ० १।१।२५)

'जो-जो भोग मृत्युलोकमें दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपनी इच्छानुसार माँग लो। ये रथोंसमेत और बाजोंसमेत जो सुन्दर रमणियाँ हैं, ऐसी रमणियाँ मनुष्योंको नहीं मिल सकतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन सारी रमणियोंसे तुम अपनी सेवा कराओ; परन्तु, हे नचिकेता! मुझे मरणसम्बन्धी (मृत्युके बाद आत्मा रहता है या नहीं) यह प्रश्न मत पूछो।'

संसारमें ऐसा कौन है जो बिना चाहे इतनी भोगसामग्रियों और उनके भोगनेके लिये दीर्घजीवनव्यापी सामर्थ्य प्राप्त होनेपर भी उन्हें नहीं चाहेगा, सुनते ही लार टपकने लगती है; परन्तु विचार और वैराग्यकी उच्च भूमिकापर पहुँचा हुआ नचिकेता अटल और अचल है, यमराजके प्रलोभनोंका उसके मनपर कोई असर नहीं हुआ। सत्य है—

रमाबिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी॥

'जो बड़भागी रामके प्रेमीजन हैं वे रमाके विलासको (भोगोंको) वमनके समान त्याग देते हैं।' जिसने एक बार विश्वविमोहन मनोहर झाँकीकी अनोखी छटा देख ली, वह फिर विषयोंकी ओर भूलकर भी नहीं झाँकता। नचिकेताने कहा—'हे मृत्यो! आपने जिन भोग्य वस्तुओंका वर्णन किया वे कल तक रहेंगी या नहीं, इसमें भी सन्देह है। ये मनुष्यकी सारी इन्द्रियोंके तेजको हरण कर लेती हैं। आपने जो दीर्घजीवन देना चाहा है, वह भी अनन्त कालकी तुलनामें बहुत थोड़ा ही है। जब ब्रह्माका जीवन भी अल्प कालका है तब औरोंकी तो बात ही क्या है! अतएव मैं यह सब नहीं चाहता। आपके रथ, घोड़े, हाथी और नाच-गान आपके ही पास रहें।'

'धनसे मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता; जहाँ केवल कामनाका ही विस्तार है, वहाँ तृप्ति कैसी ? भोगविलासकी तृष्णामें अभाव और अपूर्णतामें अतृप्ति और आकांक्षाके सिवा और क्या रह सकता है ? अतएव '**वरस्तु मे वरणीयः स एव**'–मुझे तो वही आत्मतत्त्वरूप वर चाहिये ! भला, अजर और अमर देवताओंके समीप आकर नीचेके मृत्युलोकका जरामरणशील कौन ऐसा मनुष्य होगा जो अस्थिर और परिणाममें दुःख देनेवाले विषयोंको चाहेगा ? शरीरके सौन्दर्य और विषयभोगके प्रमादोंको अनित्य और क्षणभङ्गुर समझकर भी कौन ऐसा समझदार होगा जो संसारके दीर्घजीवनसे आनन्द मानेगा ? अतएव, हे मृत्यो ! जिसके विषयमें लोग संशय करते हैं, जो महान् परलोकके विषयमें निर्णयात्मक आत्मतत्त्वविज्ञान है, मुझे वही दीजिये ।

योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥

(कठ० १ । १ । २९)

'यह आत्मतत्त्वसम्बन्धी वर गूढ़ होनेपर भी नचिकेता इसके सिवा, दूसरा (अज्ञानी पुरुषोंद्वारा इच्छित) अनित्य वर नहीं चाहता !!'

इस अग्निपरीक्षामें भी नचिकेता उत्तीर्ण हो गया। यमराजने अब नचिकेताको आत्मज्ञानका पूर्ण अधिकारी समझा । वास्तवमें जो इस मायामय जगत्के सारे सुखोंके मनोहर चित्र, धनके प्रलोभन, रमणियोंके रमणीय प्रणय-बन्धन और कमनीय कीर्तिकी कामना आदि सभी पदार्थोंको आत्मज्ञानकी तुलनामें काकविष्ठावत् या जहरके लड्डुओंके समान अत्यन्त हेय और त्याज्य समझता है, जो इस लोक और परलोकके बड़े-से-बड़े भोगोंको तुच्छ समझकर

सबको लात मार सकता है वही आत्मज्ञानका यथार्थ अधिकारी है। परन्तु जो कौड़ी-कौड़ीके लिये जन्म-जन्मान्तरतक वैरभावको आश्रय देनेके लिये तैयार रहते हैं और काम पड़नेपर आत्मज्ञानके सिवा दूसरी बात नहीं करते, वैसे लोग किस अधिकारके प्राणी हैं, इस बातको विज्ञ पाठक स्वयं सोच लें। विषयवैराग्य, साधुसंगति और भजन-साधनके प्रभावसे पहले आत्मज्ञानका अधिकार प्राप्त कर तदनन्तर उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये नहीं तो उभयभ्रष्ट होनेकी ही अधिक सम्भावना है।

श्रेय और प्रेय

यमराजने नचिकेताको परम वैराग्यवान्, निर्भीक और उत्तम अधिकारी समझकर परम प्रसन्न होकर कहा कि 'हे नचिकेता! एक वस्तु श्रेय (कल्याण) है और दूसरी वस्तु प्रेय है (श्रेय मनुष्यके वास्तविक कल्याण मोक्षका नाम है और प्रेय स्त्री-पुत्र, धन-मानादि प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका नाम है)। इन दोनोंका भिन्न-भिन्न प्रयोजन है और ये अपने-अपने प्रयोजनमें मनुष्यको बाँधते हैं। इन दोनोंमेंसे जो श्रेयको ग्रहण करता है उसका कल्याण (मोक्ष) होता है और जो प्रेयको चुनता है वह आपातरमणीय धन-मानादिमें फँसकर पुरुषार्थसे भ्रष्ट हो जाता है।'

'श्रेय और प्रेय दोनोंमेंसे मनुष्य चाहे जिसको ग्रहण कर सकता है। बुद्धिमान् पुरुष श्रेय और प्रेय दोनोंके गुण-दोषोंको भलीभाँति समझकर उनका भेद करता है और नीरक्षीरविवेकी हंसकी तरह प्रेयको त्यागकर श्रेयको ग्रहण करता है। परन्तु मूर्ख

लोग 'प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते'—योगक्षेमके लिये यानी प्राप्त स्त्री, पुत्र, धनादिकी रक्षा, और अप्राप्त भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये प्रेयको ही ग्रहण करते हैं। हे नचिकेता!—

स त्वं प्रियान् प्रियरूपाꣳश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।
नैताꣳ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः॥
(कठ० १।२।३)

'तुमने मेरे द्वारा बार-बार प्रलोभन दिखलाये जानेपर भी जो प्रिय स्त्री-पुत्रादि और प्रियरूप अप्सरादि समस्त भोग्य विषयोंको अनित्य समझकर त्याग दिया, इस द्रव्यमयी निकृष्ट गतिको तुम नहीं प्राप्त हुए, जिसमें कि साधारणतः बहुत-से मनुष्य डूबे रहते हैं!'

इस भाषणसे यमराजने नचिकेताके विवेक और वैराग्यकी विशेष प्रशंसा कर वित्तमयी संसारगतिकी निन्दा की और साथ ही विवेक-वैराग्यसम्पन्न मनुष्य ही ब्रह्मज्ञानका अधिकारी है, यह भी सूचित किया। इसके अनन्तर श्रेय और प्रेयके परस्पर विपरीत फल उत्पन्न करनेके कारणकी मीमांसा करते हुए यमराज कहने लगे—

दूरमेते विपरीते विषूची
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त॥
(कठ० १।२।४)

'विद्या और अविद्या ये दोनों प्रसिद्ध हैं, ये दोनों एक दूस
से अत्यन्त विपरीत और भिन्न-भिन्न तरफ ले जानेवाली हैं।
नचिकेता! मैं तुम्हें विद्याका अभिलाषी मानता हूँ, क्योंकि तु
बहुत-से भोग भी नहीं लुभा सके।'

> अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
> स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
> दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
> अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥
> (कठ० १।२।५

'अविद्यामें पड़े हुए भी जो लोग अपनेको बड़े बुद्धिमान् औ
पण्डित मानते हैं वे भोगकी इच्छा करनेवाले मूढजन अन्धेसे चला
हुए अन्धोंकी तरह चारों ओर ठोकरें खाते भटकते फिरते हैं।

वास्तवमें आजकल जगत्‌में ऐसे अनेक मनुष्य हैं जो बिन
समझे-बूझे ही अपनेको तत्त्वज्ञानी माने हुए हैं। यदि उनके अन्तः
करणका दृश्य देखा जाय तो उसमें नाना प्रकारकी कामनाओंक
ताण्डवनृत्य होता हुआ दिखायी पड़ता है। परन्तु बातों औ
तर्कोंमें कहींपर ब्रह्मज्ञानमें जरा-सी भी त्रुटि नहीं दीखती
यमराजके कथनानुसार इस प्रकारके मिथ्याज्ञानियोंके लिये मोक्षक
द्वार बन्द रहता है और उन्हें पुनः-पुनः आयागमनके चक्रमें ही
ठोकरें खानी पड़ती हैं। 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि
जननीजठरे शयनम्' ऐसा क्यों होता है? यमराज कहते हैं—

> न साम्परायः प्रतिभाति बालं
> प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।

'धनके मोहसे मोहित, प्रमादमें रत रहनेवाले मूर्खको परलोक या कल्याणका मार्ग दीखता ही नहीं ।' वह तो केवल—

अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥
(कठ० १ । २ । ६)

'यही मानता है कि स्त्री-पुत्रादि भोगोंसे भरा हुआ एकमात्र यही लोक है, इसके सिवा परलोक कोई नहीं है । इसी मान्यताके कारण उसे बारंबार मेरे (मृत्युके) अधीन होना पड़ता है !'

यमराज फिर बोले कि 'हे नचिकेता! आत्मज्ञान कोई साधारण-सी बात नहीं है । अनेक लोग तो ऐसे हैं जिनको आत्माके सम्बन्धकी बातें सुननेको ही नहीं मिलतीं । बहुत-से लोग सुनकर भी इसे जान नहीं सकते, आत्माका वक्ता भी आश्चर्यरूप कहीं ही कोई मिलता है और इस आत्माको प्राप्त करनेवाला भी कहीं कोई एक निपुण पुरुष ही होता है, इसी प्रकार किसी निपुण आचार्यसे शिक्षाप्राप्त कोई विरला ही आश्चर्यरूप पुरुष आत्माको जाननेवाला होता है ।' *

'किसी साधारण मनुष्यके विवेचनसे आत्माका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, आत्मज्ञान तभी होता है जब उसका उपदेश किसी अनन्य (अभेददर्शी) समर्थ पुरुषके द्वारा किया जाता है, क्योंकि यह (आत्मा) सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होनेके कारण सर्वथा अतर्क्य है । यह ज्ञान तर्कसे प्राप्त नहीं होता, यह तो किसी अलौकिक ब्रह्मज्ञानीके द्वारा बतलाया जानेपर ही प्राप्त होता है । हे नचिकेता!

* गीता अ० २ । २९ में इसी आशयका श्लोक है ।

तुमने ऐसा पुरुष पाया है, वास्तवमें तुम सत्य-धारणासे सम्पन्न हो तुम जैसा जिज्ञासु मुझे मिलता रहे ।'

यों कहकर यमराजने सोचा कि यदि नचिकेताके मनमें कर्मकाण्डके फलोंकी अनित्यताके सम्बन्धमें कुछ भी सन्देह रह गया तो उसका परिणाम शुभ नहीं होगा । अतएव यमराजने कहा—

'हे नचिकेता ! मैं जानता हूँ कि धनराशि अनित्य है और अनित्य वस्तुओंसे नित्य वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती । यों जानते हुए भी मैंने अनित्य पदार्थोंसे स्वर्गसुखके साधनभूत नाचिकेत अग्निका चयन किया है । इसीसे मैंने यह आपेक्षिक अर्थात् अन्यान्य पदोंकी अपेक्षा नित्य (अधिककालस्थायी) यमराजका पद पाया है ।'

परन्तु, हे वत्स ! तुम तो सब प्रकारसे श्रेष्ठ हो, तुमने उस परम पदार्थके सम्मुख जगत्की चरम सीमाके भोग, प्रतिष्ठा, यज्ञ-फलरूपी हिरण्यगर्भका पद, अभयकी मर्यादा (चिरकालस्थायी जीवन), स्तुत्य और महान् ऐश्वर्यको हेय समझकर धैर्यके द्वारा त्याग दिया है । यथार्थमें तुम बड़े गुणसम्पन्न हो ।

यद्यपि यह आत्मा—यह नित्य प्रकाशरूप आत्मा जीवरूपसे हृदयमें विराजमान है तथापि सहजमें इसके दर्शन नहीं होते । क्योंकि यह अत्यन्त ही सूक्ष्म है, यह अत्यन्त गूढ है, समस्त जीवोंके अन्तरमें प्रविष्ट है, बुद्धिरूपी गुफामें छिपा हुआ है, राग-द्वेषादि अनर्थमय देहमें स्थित है और सबसे पुराना है । जब कोई

धीर पुरुष इस देवताको आत्मयोगके द्वारा अर्थात् चित्तको विषयोंसे निवृत्तकर उसे आत्मामें समाहित करता है तब इसे जानकर वह हर्ष और शोकसे तर जाता है। कारण, आत्मामें हर्ष और शोकको कहीं भी स्थान नहीं, ये तो वास्तवमें केवल बुद्धिके विकारमात्र हैं। जिसने ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके द्वारा आत्मतत्त्वको सुनकर उसे सम्यक्‌रूपसे धारण कर लिया है और धर्मयुक्त इस सूक्ष्म आत्माको जड शरीरादिसे पृथक् समझकर प्राप्त कर लिया है वही आनन्दधामको पाकर अतुल आनन्दमें रम जाता है। मैं समझता हूँ कि नचिकेताके लिये भी वह मोक्षका द्वार खुला हुआ है।'

'विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये'

यमराजके वचनोंसे अपनेको आत्मज्ञानका अधिकारी समझकर नचिकेताने कहा—

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद॥
(कठ० १।२।१४)

'हे भगवन्! आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो धर्म और अधर्मसे अतीत, तथा इस कार्य और कारणरूप प्रपञ्चसे पृथक्, एवं भूत तथा भविष्यत्‌से भिन्न जिस सर्व प्रकारके व्यावहारिक विषयोंसे अतीत परब्रह्मको आप देखते हैं उसे मुझे बतलाइये।'

साधन और स्वरूप

नचिकेताके प्रश्नको सुनकर यमराजने आत्माका स्वरूप

आपद्धर्म

एक समय कुरुदेशमें ओलोंकी बड़ी वर्षा होनेसे और उगते हुए अन्नका नाश हो जानेसे भयानक अकाल पड़ गया। अकालसे पीड़ित नर-नारी अन्नके अभावसे देश छोड़कर भागने लगे। इसीलिये चक्रके पुत्र उपस्तिने भी अपनी अप्राप्तयौवना पत्नी आटिकीको साथ लेकर देश छोड़ दिया और भटकते-भटकते दोनों एक महावतोंके ग्राममें पहुँचे। भूखके मारे उस समय उपस्ति मरणासन्नदशाको प्राप्त हो रहा था। उसने एक महावतको उबले हुए उड़दके दाने खाते देखा और उसके पास जाकर कुछ उड़द देनेको कहा। महावतने कहा—'मैं इस बर्तनमें रखे हुए जो उड़द खा रहा हूँ इन जूँठे उड़दोंके सिवा मेरे पास और उड़द नहीं है तब मैं तुम्हें कहाँसे दूँ?' महावतकी बात सुनकर उपस्तिने कहा—'मुझे इनमेंसे ही कुछ दे दो' तब महावतने उनमेंसे थोड़े-से उड़द उपस्तिको दे दिये और जल सामने रखकर कहा कि 'लो, इनको खाकर जल पी लो।' इसपर उपस्तिने कहा—'भाई! मैं यह जल पी लूँगा तो मुझे दूसरेकी जूँठन खानेका दोष लगेगा।'

महावतने अचरजसे पूछा, 'तो क्या तुमने जो उड़द मुझसे लिये हैं, ये जूँठे नहीं हैं, फिर जूँठे जलहीमें कौन-सा दोष है?'

उपस्तिने उत्तर दिया—'भाई! यदि मैं यह उड़द नहीं खाता तो मेरे प्राण नहीं रहते (प्राण-संकटमें आपद्धर्म समझकर ही मैं उड़द खा रहा हूँ) अब जल तो मेरी इच्छानुसार मुझे दूसरी जगह भी मिल जायगा। यदि उड़दकी तरह मैं तुम्हारा जूँठा जल

भी पी लूँ तब तो वह स्वेच्छाचार ही होगा। आपद्धर्म नहीं रहेगा। इसलिये मैं तुम्हारा जल नहीं पीऊँगा।' इतना कहकर उपस्तिने कुछ उड़द खा लिये और शेष अपनी स्त्रीको दे दिये। ब्राह्मणीको पहले ही कुछ खानेको मिल गया था, इसलिये पतिके दिये हुए जूँठे उड़द उसने खाये नहीं, अपने पास रख लिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल उपस्तिने प्रातःकृत्य करनेके बाद अपनी स्त्रीसे कहा—'क्या करूँ, मुझे जरा-सा भी अन्न कहींसे खानेको मिल जाय तो मैं अपना निर्वाह होने लायक कुछ धन प्राप्त कर सकता हूँ, यहाँसे समीप ही एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह ऋत्विक्के काममें मेरा भी वरण कर लेगा।'

यह सुनकर स्त्रीने कहा—'मेरे पास कलके बचे हुए कुछ उड़द हैं, लीजिये, इन्हें खाकर यज्ञमें शीघ्र चले जाइये।' भूखसे अशक्त हुए उपस्तिने उड़द खा लिये और कुछ स्वस्थ होकर वह राजाके यज्ञमें चले गये। वहाँ जाकर वे आस्तावमें (स्तुतिके स्थानमें) स्तुति करनेवाले उद्गाताओंके पास जाकर बैठ गये। और स्तुति करनेवालोंकी भूल देखकर उनसे बोले—'हे प्रस्तोता! आप जिन देवताकी स्तुति करते हैं वे देव कौन हैं? आप यदि अधिष्ठाताको जाने बिना उनकी स्तुति करेंगे तो याद रखिये, आपका मस्तक नीचे गिर पड़ेगा' इसी प्रकार उद्गातासे कहा कि 'हे उद्गीथकी स्तुति करनेवाले! यदि आप उद्गीथभागके देवताको जाने बिना उनका उद्गान करेंगे तो आपका मस्तक नीचे गिर पड़ेगा।' तदनन्तर उन्होंने प्रतिहारका गान करनेवालेकी ओर भी मुड़कर कहा कि 'हे प्रतिहारका गान करनेवाले प्रतिहर्ता! यदि आप

देवताको बिना जाने उसको प्रतिहार करेंगे तो आपका मस्तक नीचे गिर जायगा।' यह सुनकर स्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता आदि सब ऋत्विजगण मस्तकके गिरनेके डरसे अपने-अपने कर्मको छोड़कर चुप होकर बैठ गये।

राजाने अपने ऋत्विजोंकी यह दशा देखकर कहा कि 'हे भगवन्! आप कौन हैं, मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ।' उषस्तिने कहा—'राजन्! मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूँ।' राजाने कहा—'ओहो! भगवन्! उषस्ति आप ही हैं! मैंने आपके बहुत-से गुण सुने हैं। इसीलिये मैंने ऋत्विजके कामके लिये आपकी बहुत खोज की थी परन्तु आपके न मिलनेपर मुझे दूसरे ऋत्विज वरण करने पड़े। अब मेरे सौभाग्यसे आप पधारे हैं तो हे भगवन्! ऋत्विज-सम्बन्धी समस्त कर्म आप ही करनेकी कृपा कीजिये।'

उषस्तिने कहा—'बहुत अच्छा! परन्तु इन ऋत्विजोंको हटाना नहीं, मेरी आज्ञानुसार ये ऋत्विजगण अपना-अपना कर्म करें। और दक्षिणा भी जो इन्हें दी जाय, उतनी ही मुझे देना।' (न तो मैं इन लोगोंको निकालना चाहता हूँ, और न दक्षिणामें अधिक धन लेकर इनका अपमान करना चाहता हूँ। मेरी देख-रेखमें ये सब कर्म करते रहेंगे) तदनन्तर प्रस्तोता, उद्गाता आदि समस्त ऋत्विजोंने उषस्तिके पास जाकर विनयपूर्वक उनसे पूछ-पूछकर सब बातें जान लीं और उषस्तिने उन लोगोंको सब समझा-कर उनके द्वारा राजाका यज्ञ भलीभाँति पूर्ण करवाया।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

(४)

गाड़ीवालेका ज्ञान

प्रसिद्ध जनश्रुत राजाके पुत्रका पौत्र जानश्रुति नामक एक राजा था, वह बहुत ही श्रद्धाके साथ आदरपूर्वक योग्य पात्रोंको बहुत दान दिया करता था। अतिथियोंके लिये उसके घरमें प्रतिदिन बहुत-सा भोजन बनवाया जाता था। वह महान् दक्षिणा देनेवाला था। वह चाहता था कि प्रत्येक शहर और गाँवमें रहनेवाले साधु, ब्राह्मण आदि सब मेरा ही अन्न खायँ, इसलिये उसने जहाँ-तहाँ सर्वत्र ऐसे धर्मस्थान, अन्नसत्र या छात्रावास खोल रक्खे थे जहाँ अतिथियों आदिके ठहरने और भोजन करनेका सुप्रबन्ध था।

राजाके अन्नदानसे सन्तुष्ट हुए ऋषि और देवताओंने राजाको सचेत करके उसे ब्रह्मानन्दका सुख प्राप्त करानेके लिये हंसोंका रूप धारण किया और राजाको दिखायी दे सकें ऐसे समय वे उड़ते हुए राजाके महलकी छतके ऊपर जा पहुँचे। वहाँ पिछले हंसने अगले हंससे कहा—'भाई भल्लाक्ष! इस जनश्रुतके पुत्रके पौत्र जानश्रुतिका तेज दिनके समान सब जगह फैल रहा है। इसका स्पर्श न कर लेना, कहीं स्पर्श कर लेगा तो यह तेज तुझे भस्म कर डालेगा।' यह सुनकर अगले हंसने कहा—

'भाई ! तुम बैलगाड़ीवाले रैक्वको नहीं जानते, इसीसे तुम उस रैक्वसे इसका तेज बहुत ही कम होनेपर भी उसकी-सी प्रशंसा कर रहे हो।' पिछले हंसने कहा—'वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है और कैसा है, सो तो बता।' अगले हंसने कहा—'भाई ! उस रैक्वकी महिमाका क्या बखान किया जाय। जैसे जुआ खेलने-के पासेके नीचेके तीनों भाग उसके अन्तर्गत होते हैं, यानी जब जुआरीका पासा पड़ता है तब वह तीनोंको जीत लेता है। इसी प्रकार प्रजा जो कुछ भी शुभ कार्य करती है, वह सारे शुभ कर्म और उनका फल रैक्वके शुभ कर्मके अन्तर्गत है। अर्थात् प्रजाकी समस्त शुभ क्रियाओंका फल उसे मिलता है। वह रैक्व जिस जाननेयोग्य वस्तुको जानता है, उस वस्तुको जो जान जाता है उसे भी रैक्वके समान ही सब प्राणियोंके शुभ कर्मोंका फल प्राप्त होता है। मैं उसी विद्वान् रैक्वके लिये ही ऐसे कह रहा हूँ।'

महलपर सोये हुए राजा जानश्रुतिने हंसोंकी ये बातें सुनीं और रातभर वह इन्हीं बातोंको स्मरण करता हुआ जागता रहा। प्रातःकाल वन्दीजनोंकी स्तुति सुनकर राजाने बिछौनेसे उठकर वन्दीजनोंसे कहा कि 'हे वत्स ! तुम गाड़ीवाले रैक्वके पास जा-कर उससे कहो कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ।' भाटने कहा—'हे राजन् ! वह गाड़ीवाला रैक्व कौन है ? और कैसा है ?' राजाने जो कुछ हंसोंने कहा था, सो उसे कह सुनाया। राजाकी आज्ञानुसार भाटोंने बहुत-से नगरों और गाँवोंमें रैक्वकी खोज की परन्तु कहीं पता नहीं लगा। तब लौटकर उन्होंने राजासे कहा

कि 'हमें तो रैक्वका कहीं पता नहीं लगा ।' राजाने विचार किया कि इन भाटोंने रैक्वको नगरों और ग्रामोंमें ही खोजा है । भला, ब्रह्मज्ञानी महापुरुष विषयी पुरुषोंके बीचमें कैसे रहेंगे ? और उनसे कहा कि 'अरे ! जाओ, ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके रहनेके स्थानोंमें (अरण्य, नदीतट आदि एकान्त स्थानोंमें) उन्हें खोजो ।'

राजाकी आज्ञानुसार भाट फिर गये, और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी एक एकान्त निर्जन प्रदेशमें गाड़ीके नीचे बैठे हुए शरीर खुजलाते हुए एक पुरुषको उन्होंने देखा । बन्दीजन उनके पास जाकर विनयके साथ पूछने लगे—'हे प्रभो ! क्या गाड़ीवाले रैक्व आप ही हैं ? मुनिने कहा—'हाँ, मैं ही हूँ ।'

रैक्वका पता लगनेसे भाटोंको बड़ा हर्ष हुआ और वे तुरन्त राजाके पास जाकर कहने लगे कि 'हमने अमुक स्थानमें रैक्वका पता लगा लिया ।'

तदनन्तर राजा छः सौ गायें, सोनेका कण्ठहार और खचरियों-से जुता हुआ एक रथ आदि लेकर रैक्वके पास गया और वहाँ जाकर हाथ जोड़कर रैक्वसे बोला—'भगवन् ! यह छः सौ गायें, एक सोनेका हार और यह खचरियोंसे जुता हुआ रथ, ये सब मैं आपके लिये लाया हूँ । कृपा करके आप इनको स्वीकार कीजिये और हे भगवन् ! आप जिस देवताकी उपासना करते हैं, उस देवताका मुझको उपदेश कीजिये ।'

राजाकी बात सुनकर रैक्वने कहा, 'अरे शूद्र* ! यह गौएँ,

* शोकसे विकल होनेके कारण राजाको मुनिने शूद्र कहा ।

हार और रथ तू अपने ही पास रख।' यह सुनकर राजा घर लौट आया और विचारने लगा कि 'मुझको मुनिने शूद्र क्यों कहा। या तो मैं हंसोंकी वाणी सुनकर शोकातुर था इसलिये शूद्र कहा होगा। अथवा थोड़ा धन देखकर उत्तम विद्या लेनेका अनुचित प्रयत्न समझकर भी मुनि मुझको शूद्र कह सकते हैं। परन्तु बिना ज्ञानके तो मेरा शोक दूर होगा नहीं, अतएव मुनिको प्रसन्न करनेके लिये मुझे फिर वहाँ जाना चाहिये।'

यह विचारकर राजा अबकी बार एक हजार गायें, एक सोनेका कण्ठहार, खचरियोंसे जुता हुआ एक रथ और अपनी पुत्रीको लेकर फिर मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'हे भगवन्! यह सब मैं आपके लिये लाया हूँ, इनको आप स्वीकार कीजिये और धर्मपत्नीके रूपमें मेरी इस पुत्रीको, और जहाँ आप रहते हैं इस गाँवको भी ग्रहण कीजिये। तदनन्तर आप जिस देवको उपासना करते हैं उसका मुझे उपदेश कीजिये।'

राजाके वचन सुनकर, कन्याकी करुणाभरी स्थिति देखकर मुनिने उसको आश्वासन दिया और कहा कि 'हे शूद्र! तू फिर यही सब वस्तुएँ मेरे लिये लाया है! (क्या इन्हींसे ब्रह्मज्ञान खरीदा जा सकता है?)' राजा चुप होकर बैठ गया। कुछ समय बाद मुनिने राजाको धनके अभिमानसे रहित हुआ जानकर ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। मुनि रैक्व जहाँ रहते थे उस पुण्य प्रदेशका नाम रैक्वपर्ण हो गया।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

(५)

गोसेवासे ब्रह्मज्ञान

जबाला नाम्नी एक सदाचारिणी ब्राह्मणी थी। उसके सत्यकाम नामक पुत्र था। जब वह विद्याध्ययन करने योग्य हुआ, तब एक दिन उसने गुरुकुल जानेकी इच्छासे अपनी मातासे पूछा—'हे पूजनीया माता! मैं ब्रह्मचर्यपालन करता हुआ गुरुकी सेवामें रहना चाहता हूँ, गुरु मुझसे नाम और गोत्र पूछेंगे; मैं अपना नाम तो जानता ही हूँ परन्तु गोत्र नहीं जानता, अतएव मेरा गोत्र क्या है सो बतलाओ।'

जबालाने कहा—'बेटा! तू किस गोत्रका है, इस बातको मैं नहीं जानती। मेरी जवानीमें, जब तू पैदा हुआ था, तब मेरे स्वामीके घरपर बहुत-से अतिथि आया करते थे। मेरा सारा समय उनकी सेवामें ही बीत जाता था, इससे मुझको तेरे पितासे गोत्र पूछनेका समय नहीं मिला, अतएव मैं तेरा गोत्र नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम; बस, मैं इतना ही जानती हूँ। तुझसे आचार्य पूछें तो कह देना कि मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।'

माताकी आज्ञा लेकर सत्यकाम महर्षि हरिद्रुमके पुत्र गौतम ऋषिके घर गया और प्रार्थना करके बोला कि 'हे भगवन् ! मैं ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ आपके समीप रहकर सेवा करना चाहता हूँ । मुझे स्वीकार कीजिये ।' गुरुने बड़े स्नेहसे पूछा—'हे सौम्य ! तेरा गोत्र क्या है ?' सरल सत्यकामने नम्रतासे कहा—'भगवन् ! मेरा गोत्र क्या है, इस बातको मैं नहीं जानता । मैंने यहाँ आते समय मातासे पूछा था तब उन्होंने कहा कि मैं युवावस्थामें अनेकों अतिथियोंकी सेवामें लगी रहनेके कारण स्वामीसे गोत्र नहीं पूछ सकी । युवावस्थामें जब तेरा जन्म हुआ था उसी समय तेरे पिताकी मृत्यु हो गयी थी, इसलिये शोक और दुःखसे पीड़ित होनेके कारण दूसरोंसे भी मेरा गोत्र नहीं पूछ सकी । मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि मेरा नाम जबाला है और तेरा सत्यकाम है । अतएव हे भगवन् ! मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ ।'

सत्यवादी सरलहृदय सत्यकामकी सीधी-सची बात सुनकर ऋषि गौतम प्रसन्न होकर बोले—'वत्स ! ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई भी इस प्रकार सरल भावसे सची बात नहीं कह सकता—'नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति'—ऐसा सत्य और कपटरहित वचन कहनेवाला तू निश्चय ब्राह्मण है । मैं तेरा उपनयनसंस्कार करूँगा, जा ! थोड़ी-सी समिधा ले आ !'

विधिवत् उपनयनसंस्कार होनेके बाद वेदाध्ययन कराकर ऋषि गौतमने अपनी गोशालामेंसे चार सौ दुबली-पतली गौएँ चुनकर अधिकारी शिष्य सत्यकामसे कहा—'पुत्र ! इन गौओंको चराने वनमें ले जा । देख, जबतक इनकी संख्या पूरी एक हजार न हो

जाय तबतक वापस न आना।' सत्यकामने प्रसन्न होकर कहा—'भगवन्! इन गौओंकी संख्या पूरी एक हजार न हो जायगी, तबतक वापस नहीं आऊँगा।' 'नासहस्रेणावर्तयेति'—यों कहकर सत्यकाम गौओंको लेकर जिस वनमें चारे-पानीकी बहुतायत थी, उसीमें चला गया और वहीं कुटिया बनाकर वर्षोंतक उन गौओंकी तन-मनसे खूब सेवा करता रहा।

गुरुभक्तिका कितना सुन्दर दृष्टान्त है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छावाले शिष्यको गौ चरानेके लिये गुरु वनमें भेज दें और वह चुपचाप आज्ञा शिरोधार्यकर वर्षोंतक निर्जन वनमें रहने चला जाय। यह बात ज्ञानपिपासु गुरुभक्त भारतीय ऋषिकुमारोंमें ही पायी जाती है। आजकी संस्कृति तो इससे सर्वथा विपरीत है! अस्तु!

सेवा करते-करते गौओंकी संख्या पूरी एक हजार हो गयी। तब एक दिन एक वृषभने आकर पुकारा—'सत्यकाम!' सत्यकामने उत्तर दिया—'भगवन्! क्या आज्ञा है।' वृषभने कहा—'वत्स! हमारी संख्या एक हजार हो गयी है; अब हमें गुरुके घर ले चलो, मैं तुमको ब्रह्मके एक पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकामने कहा—'कहिये भगवन्!' इसके बाद वृषभने ब्रह्मके एक पादका उपदेश देकर कहा—'इसका नाम प्रकाशवान् है। अगला उपदेश तुझे अग्निदेव करेंगे।'

दूसरे दिन प्रातःकाल सत्यकाम गौओंको हाँककर आगे चला, सन्ध्याके समय रास्तेमें पड़ाव डालकर उसने गौओंको वहाँ रोका

और उन्हें जल पिलाकर रात्रिनिवासकी व्यवस्था की। तदनन्तर वनमेंसे काठ बटोरा और अग्नि जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। अग्निदेवने तीन बार कहा—'सत्यकाम!' सत्यकामने उत्तर दिया—'भगवन्! क्या आज्ञा है?' अग्निने कहा—'हे सौम्य! मैं तुझे ब्रह्मके द्वितीय पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकाम बोला—'कीजिये भगवन्!' तदनन्तर अग्निने ब्रह्मके दूसरे पादका उपदेश करके कहा—'इसका नाम अनन्तवान् है। अगला उपदेश तुझे हंस करेगा।'

सत्यकाम रातभर उपदेशका मनन करता रहा। प्रातःकाल गौओंको हाँककर आगे बढ़ा और सन्ध्या होनेपर किसी सुन्दर जलाशयके किनारे ठहर गया। गौओंके लिये रात्रिनिवासकी व्यवस्था की और आप आग जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। इतनेमें एक हंस ऊपरसे उड़ता हुआ आया और सत्यकामके पास बैठकर बोला—'सत्यकाम!' सत्यकामने कहा—'भगवन्! क्या आज्ञा है?' हंसने कहा—'हे सत्यकाम! मैं तुझे ब्रह्मके तीसरे पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकामने कहा—'भगवन्! कृपा करके कीजिये।' पश्चात् हंसने ब्रह्मके तीसरे पादका उपदेश करके कहा—'इसका नाम ज्योतिष्मान् है। अगला उपदेश तुझे जलमुर्ग करेगा।'

रातको सत्यकाम ब्रह्मके चिन्तनमें लगा रहा, प्रातःकाल गौओंको हाँककर आगे चला और सन्ध्या होनेपर एक वटके वृक्षके नीचे ठहर गया। गौओंकी उचित व्यवस्था करके वह अग्नि जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। इतनेमें एक जलमुर्गने आकर पुकारा

'सत्यकाम !' सत्यकामने उत्तर दिया 'भगवन् ! क्या आज्ञा है ?' मुर्गेने कहा—'वत्स ! मैं तुझे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ।' सत्यकाम बोला—'प्रभो ! कीजिये।' तदनन्तर जलमुर्गने आयतनवान्-रूपसे ब्रह्मका उपदेश किया।

इस प्रकार सत्य, गुरुसेवा और गोसेवाके प्रतापसे वृषभरूप वायु, अग्निदेव, हंसरूप सूर्यदेव और मुर्गरूप प्राणदेवतासे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्तकर सत्यकाम एक हजार गौओंके बड़े समूहको लेकर आचार्य गौतमके घर पहुँचा। उस समय उसके मुखमण्डलपर ब्रह्मतेज छिटक रहा था, आनन्दकी सहस्र-सहस्र किरणें झलमला रही थीं। गुरुने सत्यकामकी चिन्तारहित, तेजपूर्ण दिव्य मुख-कान्तिको देखकर कहा—'वत्स सत्यकाम !' उसने उत्तर दिया—'भगवन् !' गुरु बोले—'हे सौम्य ! तू ब्रह्मज्ञानीके सदृश दिखायी दे रहा है, वत्स ! तुझको किसने उपदेश किया ?' सत्यकामने कहा—

'भगवन् ! मुझको मनुष्येतरोंसे उपदेश प्राप्त हुआ है।' यों कहकर उसने सारा हाल सुना दिया और कहा—'भगवन् ! मैंने सुना है कि—

भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं······।

'आप-सदृश आचार्यके द्वारा प्राप्त की हुई विद्या ही श्रेष्ठ होती है, अतएव मुझे आप ही पूर्णरूपसे उपदेश कीजिये।' गुरु प्रसन्न हो गये और उन्होंने कहा—'वत्स ! तूने जो कुछ प्राप्त किया है, यही ब्रह्मतत्त्व है। अब तेरे लिये कुछ भी जानना शेष नहीं रहा।' (छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

अग्निद्वारा उपदेश

कमलका पुत्र उपकोसल सत्यकाम जाबालके पास जाकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर रहने लगा । उसने पूरे बारह वर्षतक गुरुके अग्नियोंकी सेवा की । गुरुने अपने दूसरे शिष्य ब्रह्मचारियोंका समावर्तन (वेदाध्ययन पूर्ण कराया) कर उन्हें घर जानेकी आज्ञा दी, परन्तु उपकोसलको आज्ञा नहीं दी ।

उपकोसलके मनमें कुछ विषाद हो गया, यह देखकर गुरुपत्नीके मनमें दया उपजी । उसने स्वामीसे कहा, 'इस ब्रह्मचारीने ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन किया है और श्रद्धापूर्वक विद्याध्ययन किया है और आपके अग्नियोंकी भलीभाँति सेवा की है, अतएव इसका समावर्तन करके इसकी कामना पूर्ण कीजिये । नहीं तो ये अग्नि आपको उलाहना देंगे ।' सत्यकामने बात सुनी-अनसुनी कर दी और वह बिना ही कुछ कहे यात्राके लिये घरसे चले गये ।

उपकोसलको इससे बहुत दुःख हुआ ! वह मानसिक व्याधियोंसे दुखी हो गया और अन्न छोड़कर अनशन व्रत करने लगा । स्नेहमयी गुरुपत्नीने कहा—'हे ब्रह्मचारी ! तू भोजन कर ! किसलिये भोजन नहीं करता है ?' उसने कहा—'मेरे मनमें अनेकों कामनाएँ हैं, मैं अनेक प्रकारके मानसिक दुःखोंसे ग्रस्त हूँ अतः मैं कुछ भी नहीं खा सकूँगा ।' गुरुपत्नी चुप हो गयी ।

अग्नियोंने विचार किया कि 'इस तपस्वी ब्रह्मचारीने मन लगाकर हमारी बहुत ही सेवा की है, अतएव इसकी कामनाको हमलोग पूर्ण करें ।' यह विचारकर अग्नियोंने उसे अलग-अलग ब्रह्मविद्याका यथोचित उपदेश किया ! उपदेशके अनन्तर सब

अग्नियोंने मिलकर उससे कहा—'हे सौम्य उपकोसल ! हमने तुझको अग्नि तथा आत्माका यथार्थ उपदेश दिया है, अब तेरे आचार्य आकर तुझे इस विद्याके फलका उपदेश देंगे।'

कुछ दिनों बाद गुरु यात्रासे लौट आये, उन्होंने शिष्यको पुकारा—'उपकोसल !' उसने कहा—'भगवन् !'

उपकोसलका मुख ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहा था, उसकी समस्त इन्द्रियाँ सात्त्विक प्रकाशको प्राप्त थीं, यह देखकर आचार्यने हर्षमें भरकर पूछा—'बेटा उपकोसल ! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानियोंकी तरह चमक रहा है, बता, तुझको किसने ब्रह्मका उपदेश किया ?' किसी मनुष्यसे उपकोसलको उपदेश नहीं मिला था इससे उसने स्पष्ट न कहकर सांकेतिक भाषामें कहा—'भगवन् ! आपके बिना मुझे कौन उपदेश करता ? यह अग्नियाँ पहले मानों और प्रकारके-से थे, अब आपको देखकर मानों डर-से रहे हैं।' संकेतका अर्थ समझकर आचार्यने कहा—'वत्स ! अग्नियोंने तुझे क्या उपदेश किया।' उपकोसलने अग्नियोंसे जो कुछ प्राप्त किया था, सब कह सुनाया। सुनकर गुरु बोले—'वत्स ! इन अग्नियोंने तो तुझे लोकसम्बन्धी ही उपदेश किया है। मैं तुझको उस पूर्ण ब्रह्मका उपदेश करूँगा, जिसका साक्षात् हो जानेपर जैसे कमलके पत्तेपर जलका स्पर्श नहीं होता, वैसे ही उसपर पापका स्पर्श नहीं हो सकता।' शिष्यने कहा—'भगवन् ! आप उपदेश करें।'

इसके बाद आचार्यने उपकोसलको ब्रह्मका रहस्यमय सम्पूर्ण उपदेश किया। और उसका समावर्तन करके उसे घर जानेकी आज्ञा दी। (छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

जिज्ञासु शिष्य

उपमन्युका पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषका पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लव-का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराश्विका पुत्र बुडिल ये पाँचों महाशाल अर्थात् जिनकी शालामें असंख्य विद्यार्थी पढ़ते थे ऐसी महान् शालाओंवाले महान् श्रोत्रिय यानी वेदका पठन-पाठन करनेवाले थे। एक दिन ये एकत्र होकर 'वास्तवमें आत्मा क्या है और ब्रह्म क्या है' इस विषयपर विचार करने लगे। परन्तु जब किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे तब किसी दूसरे ब्रह्मवेत्ता विद्वान्‌के पास जाकर उनसे पूछनेका निश्चय कर आपसमें कहने लगे कि 'वर्तमान समयमें अरुणके पुत्र उद्दालक आत्मरूप वैश्वानर-को भलीभाँति जानते हैं, यदि सबकी राय हो तो हमको उनके पास चलना चाहिये।' सबकी राय हो गयी और वे उद्दालकके पास गये।

उद्दालकने उनको दूरसे देखते ही उनके आनेका प्रयोजन जान लिया और वे विचार करने लगे—'ये महाशाल और महान् श्रोत्रिय आते ही मुझसे पूछेंगे और मैं इनके प्रश्नोंका पूर्ण समाधान कर नहीं सकूँगा। इससे उत्तम यही है कि मैं इन्हें किसी दूसरे योग्य पुरुषका नाम बतला दूँ।' ऐसा विचारकर उद्दालकने उनसे कहा—'हे भगवन्! मैं जानता हूँ आप मुझसे आत्माके विषयमें कुछ पूछने पधारे हैं परन्तु इस समय केकयके पुत्र प्रसिद्ध राजा अश्वपति इस आत्मरूप वैश्वानरको भलीभाँति जानते हैं, यदि आप सबकी अनुमति हो तो हम सब उनके पास चलें।' सर्वसम्मतिसे सब राजा अश्वपतिके पास गये।

अश्वपतिने उन छओं ऋषियों—अतिथियोंका अपने सेवकों-द्वारा यथायोग्य अलग-अलग भलीभाँति पूजन-सत्कार करवाया और दूसरे दिन प्रातःकाल राजा सोकर उठते ही उनके पास गये और बहुत-सा धन सामने रखकर विनयभावसे उसे ग्रहण करनेकी प्रार्थना करने लगे। परन्तु वे तो धनकी इच्छासे वहाँ नहीं गये थे, इससे उन्होंने धनका स्पर्श भी नहीं किया और चुपचाप बैठे रहे। राजाने सोचा, शायद ये मुझे अधर्मी या दुराचारी समझते हैं, इसीलिये मेरा धन (दूषित समझकर) नहीं लेते। यह विचारकर राजा कहने लगे—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

'हे मुनियो! मेरे राज्यमें कोई चोर नहीं है, (क्योंकि किसीके पास किसी वस्तुका अभाव नहीं है, कारण) मेरे देशमें ऐसा कोई धनी नहीं है जो कंजूस हो यानी यथायोग्य दान न करता हो। न मेरे देशमें कोई शराब पीता है, न कोई ऐसा द्विज है जो अग्निहोत्र न करता हो, न कोई ऐसा ही व्यक्ति है जो विद्वान् न हो; और न कोई व्यभिचारी पुरुष ही मेरे देशमें है, जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं है तो स्त्री तो व्यभिचारिणी होगी ही कहाँसे? अतएव मेरा धन शुद्ध है, फिर आप इसे क्यों नहीं लेते?'* मुनियोंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब राजाने सोचा, शायद धन थोड़ा समझकर मुनि न लेते हों, अतएव वे फिर कहने लगे—

* राजाओंको इस आदर्शपर विचार करना चाहिये और इसीके अनुसार अपने राज्यके एक-एक पैसेको शुद्ध बनाना चाहिये।

'हे भगवन् ! मैं एक यज्ञका आरम्भ कर रहा हूँ, उस यज्ञमें मैं एक-एक ऋत्विक्को जितना धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे प्रत्येकको दूँगा । आप मेरे यहाँ ठहरिये और मेरा यज्ञ देखिये ।'

राजाकी यह बात सुनकर उन्होंने कहा—'हे राजन् ! मनुष्य जिस प्रयोजनसे जिसके पास जाता है, उसका वही प्रयोजन पूरा करना चाहिये । हमलोग आपके पास आत्मरूप वैश्वानरका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आये हैं, क्योंकि इस समय आप ही उसको भलीभाँति जानते हैं इसलिये आप हमें वही समझाइये । हमें धन नहीं चाहिये ।'*

राजाने उनसे कहा–'हे मुनियो ! कल प्रातःकाल मैं इसका उत्तर आपको दूँगा ।' ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अभिमानका त्याग करना परम आवश्यक है, केवल मुँहसे माँगनेपर ज्ञान नहीं मिलता । वह अधिकारीको ही मिलता है । राजाके उत्तरसे मुनि इस बातको समझ गये और दूसरे दिन अभिमान त्यागकर सेवावृत्तिका परिचय देनेवाले समिधको हाथोंमें लेकर दुपहरसे पहले ही विनयके साथ शिष्यभावसे सब राजाके पास पहुँचे और जाते ही उनके चरणोंमें प्रणाम करने लगे । राजाने उनको चरणोंमें प्रणाम नहीं करने दिया, क्योंकि एक तो वे ब्राह्मण थे, और दूसरे सद्गुरु मान-बड़ाई-पूजाकी इच्छा नहीं रखते । तदनन्तर राजाने उन्हें गुरुरूपसे नहीं, किन्तु दाताके रूपसे वैश्वानररूप ब्रह्मविद्याका उपदेश किया ।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

---

* इसी प्रकार जिज्ञासु साधकको किसी भी प्रलोभनमें न फँसकर अपने ध्येयपर दृढ़ रहना चाहिये ।

तत्त्वमसि

अरुणके पुत्र आरुणि उद्दालकके श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। वह बारह वर्षकी अवस्थातक केवल खेलकूदमें ही रहा। पिता सोचते रहे कि यह स्वयं ही विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा करे तो उत्तम है परन्तु उसने वैसी इच्छा नहीं की, तब पितासे नहीं रहा गया। उन्होंने एक दिन उसे अपने पास बुलाकर कहा—'हे वत्स श्वेतकेतो! तू जा और सुयोग्य गुरुके समीप ब्रह्मचारी होकर रह। हे सौम्य! अपने वंशमें कोई भी ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जिसने वेदोंका त्याग किया हो और जो ब्राह्मणके गुण और आचारोंसे रहित होकर केवल नामधारी ब्राह्मण बनकर रहा हो। ऐसा करना योग्य नहीं है। सारांश, तुझे वेदोंका अध्ययन करके ब्रह्मको प्राप्त करना ही चाहिये।'

पिता आरुणिका मीठा उलाहना सुनकर श्वेतकेतु बारह वर्षकी अवस्थामें गुरुके घर गया और पूरे चौबीस वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें रहकर व्याकरणादि छः अङ्गोंसहित चारों वेदोंका पूर्ण अध्ययन करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर घर लौटा। उसने मन-ही-मन विचार किया कि 'मैं वेदका पूर्ण ज्ञाता हूँ, मेरे समान पण्डित और कोई नहीं है। मैं सर्वोपरि विद्वान् और बुद्धिमान् हूँ।' इस प्रकारके विचारोंसे उसके मनमें गर्व उत्पन्न हो गया, और वह उद्धत और विनयरहित होकर बिना ही प्रणाम किये पिताके सामने आकर बैठ गया। आरुणि ऋषि उसका नम्रतारहित औद्धत्यपूर्ण आचरण देखकर इस बातको जान गये कि इसको वेदके अध्ययनसे

बड़ा गर्व हो गया है, तो भी आरुणि ऋषिने उस अविनयी पुत्रपर क्रोध नहीं किया और कहा—'हे श्वेतकेतो ! तू ऐसा क्या पढ़ आया है कि जिससे अपनेको सबसे बड़ा पण्डित समझता है और इतना अभिमानमें भर गया है । विद्याका स्वरूप तो विनयसे ही खिलता है । अभिमानी पुरुषके हृदयसे सारे गुण तो दूर चले जाते हैं और समस्त दोष अपने-आप उसमें आ जाते हैं । तूने अपने गुरुसे यह सीखा हो तो बता, कि ऐसी कौन-सी वस्तु है कि जिस एकके सुननेसे बिना सुनी हुई सब वस्तुएँ सुनी जाती हैं, जिस एकके विचारसे बिना विचार की हुई सब वस्तुओंका विचार हो जाता है, जिस एकके ज्ञानसे नहीं जानी हुई सब वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है !'

आरुणिके ऐसे वचन सुनते ही श्वेतकेतुका गर्व गल गया, उसने सोचा कि 'मैं तो ऐसी किसी वस्तुको नहीं जानता । मेरा अभिमान मिथ्या है ।' वह नम्र होकर विनयके साथ पिताके चरणोंपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन् ! जिस एक वस्तुके श्रवण, विचार और ज्ञानसे सम्पूर्ण वस्तुओंका श्रवण, विचार और ज्ञान हो जाता है, उस वस्तुको मैं नहीं जानता । आप उस वस्तुका उपदेश कीजिये ।'

आरुणिने कहा—'हे सौम्य ! जैसे कारणरूप मिट्टीके पिण्डका ज्ञान होनेसे मिट्टीके कार्यरूप घट, शराव आदि समस्त वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है और यह पता लग जाता है कि घट आदि कार्यरूप वस्तुएँ सत्य नहीं हैं केवल वाणीके विकार हैं, सत्य तो केवल मिट्टी ही है । हे सौम्य ! जैसे कारणरूप सोनेके पिण्डका ज्ञान होनेसे सोनेके कड़े, कुण्डलादि सब कार्योंका ज्ञान हो जाता

है और यह पता लग जाता है कि ये कड़े, कुण्डलादि सत्य नहीं हैं, केवल वार्णाके विकार हैं, सत्य तो केवल सोना ही है। और जैसे नख काटनेकी नहरनी आदिमें रहे हुए लोहेका ज्ञान हो जानेसे लोहेके कार्य खड्ग, परशु आदिका ज्ञान हो जाता है और यह पता लग जाता है कि वास्तवमें ये सब सत्य नहीं हैं, एक लोहा ही सत्य है, बस इसी तरह वह ज्ञान होता है।'

पिता आरुणिके यह वचन सुनकर श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी! निश्चय ही मेरे विद्वान् गुरु इस वस्तुको नहीं जानते हैं, क्योंकि यदि वे जानते होते तो मुझे बतलाये बिना कभी नहीं रहते। अतएव हे भगवन्! अब आप ही मुझको उस वस्तुका उपदेश दीजिये जिस एकके जाननेसे सब वस्तुएँ जानी जाती हैं।' आरुणिने कहा, अच्छा सावधान होकर सुन—

'हे प्रियदर्शन! यह नाम, रूप और क्रियास्वरूप दृश्यमान जगत् उत्पन्न होनेसे पहले केवल एक अद्वितीय, सत् ही था। उस सत् ब्रह्मने संकल्प किया कि 'मैं एक बहुत हो जाऊँ' ऐसा संकल्प करके उसने पहले तेज उत्पन्न किया, फिर उससे जल उत्पन्न किया और तदनन्तर उससे अन्न उत्पन्न किया। इन्हीं तीन तत्त्वोंसे सब पदार्थ उत्पन्न हुए। जगत्में जितनी वस्तुएँ हैं, सब तेज, जल और अन्न इन तीनोंके मिश्रणसे ही बनी हैं। जहाँ प्रकाश या गरमी है वहाँ तेजतत्त्वकी प्रधानता है, जहाँ द्रव या प्रवाही भाव है वहाँ जलकी प्रधानता है और जहाँ कठोरता है वहाँ अन्न या पृथ्वीकी प्रधानता है। अग्निमें जो लाल, श्वेत और कृष्ण वर्ण है उसमें ललाई

तेजकी, सफेदी जलकी और श्यामता पृथ्वीकी है। यही बात सूर्य, चन्द्रमा और बिजलीमें है। यदि अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और बिजलीमेंसे तेज, जल और पृथ्वीको निकाल लिया जाय तो अग्निमें अग्निपन, सूर्यमें सूर्यपन, चन्द्रमामें चन्द्रपन और विद्युत्में विद्युत्पन कुछ भी नहीं रह जायगा। इसी प्रकार सभी वस्तुओंमें समझना चाहिये। खाये हुए अन्नके भी तीन रूप हो जाते हैं। स्थूल भाग विष्ठा बन जाता है, मध्यम भाग मांस बनता है और सूक्ष्म भाग मनरूप हो जाता है। इसी तरह जलके स्थूल भागसे मूत्र बनता है, मध्यम भागसे रक्त बनता है और सूक्ष्म भाग प्राण बनता है। इसी प्रकार तैल, घृत आदि तैजस पदार्थोंके स्थूल भागसे हड्डी बनती है, मध्यम भाग मज्जारूप हो जाता है और सूक्ष्म भाग वाणीरूप होता है। अतएव मन अन्नमय है; प्राण जलमय है और वाक् तेजमय है अर्थात् मन अन्नसे बनता है, प्राण जलसे बनता है, और वाणी तेजसे बनती है।'

इसपर श्वेतकेतुने कहा—'हे पिताजी! मुझको यह विषय और साफ करके समझाइये।' उद्दालक आरुणि बोले—हे सौम्य! जैसे दही मथनेसे उसका सूक्ष्म सार तत्त्व नवनीत ऊपर तैर आता है इसी प्रकार जो अन्न खाया जाता है, उसका सूक्ष्म सार अंश मन बनता है। जलका सूक्ष्म अंश प्राण और तेजका सूक्ष्म अंश वाक् बनता है। असलमें ये मन, प्राण और वाणी तथा इनके कारण अनादि कार्यकारणपरम्परासे मूलमें एक ही सत् वस्तु ठहरते हैं। सबका मूल कारण सत् है, वही परम आश्रय और अधिष्ठान है। सत्के कार्य नाना प्रकारकी आकृतियाँ सब

वाणीके विकार हैं, नाममात्र हैं। यह सत् अणुकी भाँति सूक्ष्म है, समस्त जगत्का आत्मारूप है, जैसे सर्पमें रज्जु कल्पित है, इसी प्रकार जगत् इस 'सत्' में कल्पित है। हे श्वेतकेतो! वह 'सत्' वस्तु तू ही है। 'तत्त्वमसि'

हे सौम्य! जैसे शहदकी मक्खी अनेक प्रकारके वृक्षोंके रसको एकत्र करके उसको एकरस करके शहदके रूपमें परिणत करती है, शहदरूपको प्राप्त रस जैसे यह नहीं जानता कि मैं आमके पेड़का रस हूँ या मैं कटहरके वृक्षका रस हूँ, इसी प्रकार सुषुप्तिकालमें जीव 'सत्' वस्तुके साथ एकीभावको प्राप्त होकर यह नहीं जानते कि हम सत्में मिल गये हैं। सुषुप्तिसे जागकर पुनः वे अपने-अपने पहलेके बाघ, सिंह, वृक, शूकर, कीट, पतंग और मच्छरके शरीरको प्राप्त हो जाते हैं। यह जो सूक्ष्म तत्त्व है यही आत्मा है, यह सत् है और हे श्वेतकेतो! वह तू ही है। 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझको फिर समझाइये।' आरुणि बोले—'हे सौम्य! जैसे समुद्रके जलसे ही बादलोंके द्वारा पुष्ट हुई गंगा आदि नदियाँ अन्तमें समुद्रमें ही मिलकर अपने नामरूपको त्याग देती हैं, यह नहीं जानतीं कि 'मैं गंगा हूँ, मैं नर्मदा हूँ' और सर्वथा समुद्रभावको प्राप्त हो जाती हैं, और फिर मेघके द्वारा वृष्टिरूपसे समुद्रसे बाहर निकल आती हैं किन्तु यह नहीं जानतीं कि हम समुद्रसे निकली हैं। इसी प्रकार ये जीव भी 'सत्' मेंसे निकलकर सत्में ही लीन होते हैं और पुनः उसीसे

निकलते हैं परन्तु यह नहीं जानते कि हम 'सत्' से आये हैं। और यहाँ वही बाघ, सिंह, वृक, शूकर, कीट, पतंग या मच्छर जो-जो पहले होते हैं वे हो जाते हैं। यह जो सूक्ष्म तत्त्व सबका आत्मा है, यह सत् है, यही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! यह सत् तू ही है!' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझे फिरसे समझाइये।' उद्दालक आरुणिने 'तथास्तु' कहकर समझाना शुरू किया—

हे सौम्य! बड़े भारी वृक्षकी जड़पर कोई चोट करे तो यह एक ही चोटमें सूख नहीं जाता, वह जीता है और उस छेदमेंसे रस झरता है। वृक्षके बीचमें छेद करनेपर भी वह सूखता नहीं, छेदमेंसे रस झरता है, इसी प्रकार अग्रभागपर चोट करनेसे भी वह जीता है और उसमेंसे रस टपकता है। जबतक उसमें जीवात्मा व्याप्त रहता है तबतक वह मूलके द्वारा जल ग्रहण करता हुआ आनन्दसे रहता है। जब इस वृक्षकी शाखाओंमें एक शाखासे जीव निकल जाता है तब वह सूख जाती है, दूसरीसे निकलनेपर दूसरी, और तीसरीसे निकलनेपर तीसरी सूख जाती है। और जब सारे वृक्षको जीव त्याग देता है तब वह सब-का-सब सूख जाता है। इसी प्रकार यह शरीर भी जब जीवसे रहित होता है तभी मृत्युको प्राप्त होता है। जीव कभी मृत्युको प्राप्त नहीं होता, यह जीवरूप सूक्ष्म तत्त्व ही आत्मा है। यह सत् है, यही आत्मा है और हे श्वेतकेतो! 'वह सत् तू ही है!' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' पिता आरुणिने कहा—'अच्छा, एक बड़का फल तोड़कर ला! फिर

तुझे समझाऊँगा।' श्वेतकेतु फल ले आया। पिताने कहा—'इसे तोड़कर देख इसमें क्या है?' श्वेतकेतुने फल तोड़कर कहा—'भगवन्! इसमें छोटे-छोटे बीज हैं।' ऋषि बोले, 'अच्छा, एक बीजको तोड़कर देख उसमें क्या है?' श्वेतकेतुने बीजको फोड़कर कहा—'इसमें तो कुछ भी नहीं दीखता।' तब पिता आरुणि बोले—'हे सौम्य! तू इस वट-बीजके सूक्ष्म भावको नहीं देखता, इस अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वसे ही महान् वटका वृक्ष निकलता है। बस, जैसे यह अत्यन्त सूक्ष्म वट-बीज बड़े भारी वटके वृक्षका आधार है, इसी प्रकार सूक्ष्म सत् आत्मा इस समस्त स्थूल जगत्का आधार है। हे सौम्य! मैं सत्य कहता हूँ, तू मेरे वचनमें श्रद्धा रख। यह जो सूक्ष्म तत्त्व आत्मा है वह सत् है और यही आत्मा है। हे श्वेतकेतो! वह 'सत्' तू ही है।' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन्! मुझको पुनः दूसरे दृष्टान्तसे समझाइये।' उद्दालकने एक नमककी डली श्वेतकेतुके हाथमें देकर कहा—'वत्स! इस डलीको अभी जलसे भरे हुए लोटेमें डाल दे और फिर कल सवेरे उस लोटेको लेकर मेरे पास आना।' श्वेतकेतुने ऐसा ही किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्वेतकेतु जलका लोटा लेकर पिताके पास गया, तब उन्होंने कहा—'हे सौम्य! रातको जो नमककी डली लोटेमें डाली थी, उसको जलमेंसे ढूँढ़कर निकाल तो दे, मैं उसे देखूँ।' श्वेतकेतुने देखा, पर नमककी डली उसे नहीं मिली, क्योंकि वह तो जलमें गलकर जलरूप हो गयी थी। तब आरुणिने कहा—'अच्छा, इसमेंसे इस तरफसे थोड़ा-सा जल

चखकर बता तो कैसा है ? श्वेतकेतुने आचमन करके कहा—'पिताजी ! जल खारा है ।' आरुणि बोले—'अच्छा, अब बीचमेंसे लेकर चखकर बता ।' श्वेतकेतुने चखकर कहा—'पिताजी ! यह भी खारा है ।' आरुणिने कहा—'अच्छा ! अब दूसरी ओरसे जरा-सा पीकर बता कैसा स्वाद है ?' श्वेतकेतुने पीकर कहा—'पिताजी ! इधरसे भी स्वाद खारा ही है ।' अन्तमें पिताने कहा—'अब सब ओरसे पीकर, फिर जलको फेंक दे और मेरे पास चला आ ।' श्वेतकेतुने वैसा ही किया और आकर पितासे कहा—'पिताजी ! मैंने जो नमक जलमें डाला था, यद्यपि मैं अपनी आँखोंसे उसको नहीं देख पाता परन्तु जीभके द्वारा मुझको उसका पता लग गया है कि उसकी स्थिति उस जलमें सदा और सर्वत्र है ।' पिताने कहा—'हे सौम्य ! जैसे तू यहाँ उस प्रसिद्ध 'सत्' नमकको नेत्रोंसे नहीं देख सका तो भी वह विद्यमान है इसी प्रकार यह सूक्ष्म तत्त्व आत्मा है । वह सत् है और वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वह आत्मा तू ही है ।' 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी ! मुझे फिर उपदेश कीजिये ।' तब मुनि उद्दालक बोले—'सुन ! जैसे चोर आँखोंपर पट्टी बाँधकर किसी मनुष्यको बहुत दूरके गान्धारदेशसे लाकर किसी जङ्गलमें निर्जन प्रदेशमें छोड़ दे और वह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओंकी ओर देख-देखकर सहायताके लिये पुकार करके कहे कि 'मुझको आँखोंपर पट्टी बाँधकर चोरोंने यहाँ लाकर छोड़ दिया है' और जैसे उसकी करुण पुकारको सुनकर कोई दयालु पुरुष दयावश उसकी आँखोंकी पट्टी खोल दे और

उससे कह दे कि 'गान्धार देश इस दिशामें है, तू इस रास्तेसे चला जा, वहाँ पहुँच जायगा ।' और वह बुद्धिमान् अधिकारी पुरुष जैसे उस दयालु पुरुषके वचनोंपर श्रद्धा रखकर उसके बताये मार्गपर चलने लगता है और एक गाँवसे दूसरे गाँव पूछ-परछ करता हुआ आखिर अपने गान्धार देशको पहुँच जाता है । इसी प्रकार अज्ञानकी पट्टी बाँधे हुए काम, क्रोध, लोभादि चोरोंके द्वारा संसाररूपी भयङ्कर वनमें छोड़ा हुआ जीव ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके दयापरवश हो बतलाये हुए मार्गसे चलकर अविद्याके फन्देसे छूटकर अपने मूल स्वरूप 'सत्' आत्माको प्राप्त हो जाता है । यह जो सूक्ष्म तत्त्व है, सो आत्मा है । वह सत् है, वही आत्मा है, हे श्वेतकेतो ! वह सत् आत्मा तू ही है । 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन् ! कृपापूर्वक मुझको फिर उपदेश कीजिये ।' तब मुनि उद्दालक बोले—'सुन, जैसे कोई एक रोगी मनुष्य मरनेवाला होता है, तब उसके सम्बन्धी लोग उसे घेरकर पूछते हैं कि तुम हमें पहचानते हो या नहीं ? जबतक उस रोगी मनुष्यकी वाणीका मनमें, मनका प्राणमें, प्राणका तेजमें और तेजका ब्रह्ममें लय नहीं हो जाता तबतक वह सबको पहचान सकता है । परन्तु जब उसकी वाणीका मनमें, मनका प्राणमें, प्राणका तेजमें और तेजका ब्रह्ममें लय हो जाता है तब वह किसीको नहीं पहचान सकता । यह जो सूक्ष्म भाव है सो आत्मा है, वह सत् है, वही आत्मा है, हे श्वेतकेतो ! वह आत्मा तू ही है । 'तत्त्वमसि'

श्वेतकेतुने कहा—'भगवन् ! फिर समझाइये'

तब मुनि कहने लगे—'अच्छा सुन ! एक आदमी चोरीके सन्देहमें पकड़ा जाता है, और उससे पूछा जाता है कि तैंने चोरी की या नहीं, वह अस्वीकार करता है। तब राज्यके अधिकारी जलती हुई कुल्हाड़ी लाकर उसके हाथमें देनेकी आज्ञा करते हैं, कुल्हाड़ी लायी जाती है और यदि उसने चोरी की है और झूठ बोलकर छूटना चाहता है तो आत्माको असत्यके साथ जोड़नेके कारण कुल्हाड़ीका स्पर्श होते ही उसका हाथ जल जाता है। और उसे अपराधके लिये दण्ड दिया जाता है। परन्तु यदि वह चोर नहीं होता, और सत्य ही कहता है तो आत्माको सत्यके साथ संयुक्त रखनेके कारण उसका हाथ उस कुल्हाड़ीसे नहीं जलता और वह बन्धनसे छूट जाता है।*

इस प्रकार सत्यताके कारण जलती हुई कुल्हाड़ीसे सत्यवक्ता बच जाता है, इससे सिद्ध होता है कि जीव सत् है, वह सत् है, वही आत्मा है। हे श्वेतकेतो ! वह आत्मा तू ही है। 'तत्त्वमसि'

इस प्रकार पिता उद्दालक आरुणिके उपदेशसे श्वेतकेतु आत्माके अपरोक्ष ज्ञानको प्राप्त होकर कृतार्थ हो गया।

(छान्दोग्य उपनिषद्के आधारपर)

---

* इस वर्णनसे पता लगता है कि प्राचीन कालमें सत्यपर कितना विश्वास था। सत्यके प्रतापसे उस सत्यमय वातावरणमें जलती हुई कुल्हाड़ी भी सत्यवक्ताके हाथ नहीं जला सकती थी, और असत्यका आश्रयी उसीसे जलकर दण्डित होता था।

(९)

एक सौ एक वर्षका ब्रह्मचर्य

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ।

(छान्दो० ८ । ७ । १)

एक समय प्रजापतिने कहा कि 'आत्मा पापसे रहित, बुढ़ापेसे रहित, मृत्युसे रहित, शोकसे रहित, क्षुधासे रहित, पिपासासे रहित, सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प है । उस आत्माकी खोज करनी

चाहिये । वही जानने योग्य है । जो उस आत्माको जानकर उसका अनुभव करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंको और सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त करता है ।'

प्रजापतिके इस वचनको सुनकर देवता और असुर दोनोंने आत्माको जाननेकी इच्छा की । देवताओंमें इन्द्र और असुरोंमें विरोचन प्रतिनिधि चुने गये और उन दोनोंने प्रजापतिके पास जानेका विचार किया । परस्पर द्वेषके कारण आपसमें एक दूसरेसे कुछ भी न कहकर दोनों समित्पाणि होकर विनयपूर्वक प्रजापतिके पास गये ।*

दोनोंने वहाँ जाकर परस्परकी ईर्षाको भुलाकर लगातार बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन किया । इसके बाद प्रजापतिने उनसे पूछा—

किमिच्छन्ताववास्तम्

'किस इच्छासे तुम दोनों यहाँ आकर रहे हो ?'

उन्होंने कहा—'भगवन् ! आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधा और पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प है, वह जानने योग्य है, वही अनुभव करने योग्य है, जो उसको जानकर उसका अनुभव करता है वह सम्पूर्ण लोकों और सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त होता है । आपके ये वचन सबने

* यह नियम है कि—'स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।'
(मुण्डक० १ । २ । १२)

'शिष्यको हाथमें समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाना चाहिये ।'

सुने हैं इसीसे उस आत्माको जाननेकी इच्छासे हम लोग यहाँ आये हैं।'

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति।

प्रजापतिने कहा 'आँखोंमें यह जो पुरुष द्रष्टा अन्तर्मुखी दृष्टि-वालोंको दीखता है, यही आत्मा है, यही अमृत है, यही अभय है, यही ब्रह्म है।'

इन्द्र और विरोचनने अशुद्ध बुद्धि होनेके कारण इस कथन-को अक्षरशः ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया। उन्होंने समझा कि नेत्रोंमें जो मनुष्यका प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है वही आत्मा है। इसी निश्चयको दृढ़ करनेके लिये उन्होंने प्रजापतिसे फिर पूछा— 'हे भगवन्! जलमें जो पुरुषका प्रतिबिम्ब दीखता है अथवा दर्पणमें शरीरका जो प्रतिबिम्ब दीखता है, इन दोनोंमेंसे आपका बतलाया हुआ ब्रह्म कौन-सा है? क्या ये दोनों एक ही हैं।' प्रजापतिने कहा 'हाँ, हाँ, वह इन दोनोंमें ही दीख सकता है। वही प्रत्येक वस्तुमें है।'

इसके बाद प्रजापतिने उनसे कहा—'जाओ! उस जलसे भरे हुए कुण्डमें देखो और यदि वहाँ आत्माको न पहचान सको तो फिर मुझसे पूछना, मैं तुम्हें समझाऊँगा।' दोनों जाकर कुण्डमें अपना प्रतिबिम्ब देखने लगे। प्रजापतिने पूछा 'तुम लोग क्या देखते हो?' उन्होंने कहा—

सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आलोमभ्य आनखेभ्यः प्रतिरूपमिति।

'भगवन् ! नखसे लेकर शिखातक हम सारे आत्माको देख रहे हैं।' नखसिखकी बात सुनकर ब्रह्माजीने फिर कहा—'अच्छा, तुम जाओ और शरीरोंको स्नान कराकर अच्छे-अच्छे गहने पहनो और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण करो। फिर जाकर जलके कुण्डमें देखो।' नख और केशके सदृश यह शरीर भी अनात्म है। इसी बातको समझानेके लिये प्रजापतिने यों कहा, परन्तु उन दोनोंने इस बातको नहीं समझा। वे दोनों अच्छी तरह नहा-धोकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्रालङ्कारोंसे सजकर कुण्डपर गये और उसमें प्रतिबिम्ब देखने लगे। प्रजापतिने पूछा—'क्या देखते हो ?' उन्होंने कहा—'हे भगवन् ! जैसे हमने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण किये हैं, इसी प्रकार हमारे इस आत्माने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्रालङ्कारोंको धारण किया है।'

प्रजापतिने सोचा कि अन्तःकरणकी अशुद्धिके कारण आत्माका यथार्थ स्वरूप इनकी समझमें नहीं आया, सम्भवतः मेरे वचनोंका मनन करनेसे इनके प्रतिबन्धक संस्कारोंके दूर होनेपर इनको आत्मस्वरूपका ज्ञान हो सकेगा। यों विचारकर प्रजापतिने कहा—'यही आत्मा है, यही अविनाशी है, यही अभय है, यही ब्रह्म है।'

प्रजापतिके वचन सुन इन्द्र और विरोचन सन्तुष्ट होकर अपने-अपने घरकी ओर चले। उनको यों ही जाते देखकर प्रजापतिने मनमें कहा—

अनुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वासुरा वा ते पराभविष्यन्ति।

'ये बेचारे आत्माको जाने बिना ही, साक्षात् अनुभव किये बिना ही जा रहे हैं। इन देव और असुरोंमेंसे जो कोई भी इस (प्रतिबिम्ब-आधार शरीरको ही ब्रह्म माननेके) उपनिषद्वाले होंगे, उनका तो पराभव ही होगा।'

विरोचन तो अपनेको ज्ञानी मानकर शान्त हृदयसे असुरोंके पास जा पहुँचा और 'प्रतिबिम्बके निमित्त शरीरको ही आत्मा समझकर उसने इस शरीरमें आत्मबुद्धिरूप उपनिषद्का उपदेश आरम्भ कर दिया।' उसने कहा—'प्रजापतिने शरीरको ही आत्मा बतलाया है, इसलिये यह शरीररूपी आत्मा ही पूजा करने योग्य है, यही सेवा करने योग्य है, इस जगत्में केवल इस शरीररूपी आत्माकी ही पूजा और सेवा करनी चाहिये। इसीकी सेवासे मनुष्यको दोनों लोक (दोनों लोकोंमें सुख) प्राप्त हो सकता है।'

इस देहात्मवादके कारणसे जो दान नहीं करता, सत्कार्योंमें श्रद्धा नहीं रखता तथा यज्ञादि नहीं करता, उसको आज भी असुर कहा जाता है। यह देहात्मवादी उपनिषद् असुरोंका ही चलाया हुआ है। ऐसे लोग शरीरको ही आत्मा समझकर इसे गहने, कपड़े आदिसे सजाया करते हैं। और सारा जीवन इस शरीरकी सेवा-पूजामें ही खो देते हैं। अन्तमें यही लोग मृत शरीरको भी गहने-कपड़ोंसे सजाकर ऐसा समझते हैं कि हम स्वर्गको जीत लेंगे। 'अमुं लोकं जेष्यन्तः।'

इधर दैवी सम्पदावाले इन्द्रको स्वर्गमें पहुँचनेसे पहले ही विचार हुआ कि 'प्रजापतिने तो आत्माको अभय कहा है, परन्तु

इस प्रतिबिम्बरूप आत्माको तो अनेक भय रहते हैं। जब शरीर सजा होता है तो प्रतिबिम्ब भी सजा हुआ दीखता है, शरीरपर सुन्दर वस्त्र होते हैं तो प्रतिबिम्ब भी सुन्दर वस्त्रोंवाला दीखता है, शरीर नख-केशसे रहित साफ-सुथरा होता है तो प्रतिबिम्ब भी साफ-सुथरा दीखता है। इसी प्रकार यदि शरीर अन्धा होता है तो प्रतिबिम्ब भी अन्धा होता है, शरीर काला होता है तो प्रतिबिम्ब भी काला दीखता है, शरीर लूला-लँगड़ा होता है तो प्रतिबिम्ब भी लूला-लँगड़ा दीखता है, शरीरका नाश होता है तो प्रतिबिम्ब भी नष्ट हो जाता है। इसलिये इसमें तो मैं कुछ भी आत्मस्वरूपता नहीं देखता।'

इस प्रकार विचारकर इन्द्र समित्पाणि होकर फिर प्रजापतिके पास आया। प्रजापतिने इन्द्रको देखकर कहा—'इन्द्र! तुम तो विरोचनके साथ ही शान्त हृदयसे वापस चले गये थे, अब फिर किस इच्छासे आये हो?' इन्द्रने कहा—'भगवन्! जैसा शरीर होता है वैसा ही प्रतिबिम्ब दीखता है, शरीर सुन्दर वस्त्रालङ्कृत और परिष्कृत होता है तो प्रतिबिम्ब भी वस्त्रालङ्कृत और परिष्कृत दीखता है। शरीर अन्ध, स्राम या अंगहीन होता है तो प्रतिबिम्ब भी वैसा ही दीखता है। शरीरका नाश होता है तो इस प्रतिबिम्ब-रूप आत्माका भी नाश होता है। अतएव इसमें मुझे कोई आनन्द नहीं दीख पड़ता।'

प्रजापतिने इन्द्रके वचन सुनकर कहा—'हे इन्द्र! ऐसी ही बात है। वास्तवमें प्रतिबिम्ब आत्मा नहीं है, मैं तुम्हें फिर समझाऊँगा, अभी फिर बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतसे यहीं रहो।'

इन्द्र बत्तीस वर्षतक फिर ब्रह्मचर्यके साथ गुरुके समीप रहा, तब प्रजापतिने उससे कहा—

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति ।

'जो इस स्वप्नमें पूजित होता हुआ विचरता है, स्वप्नमें अनेक भोग भोगता है वह आत्मा है, वही अभय है, अमृत है, वही ब्रह्म है ।'

इन्द्र शान्त हृदयसे अपनेको कृतार्थ समझकर चला परन्तु देवताओंके पास पहुँचनेके पहले ही उसने सोचा कि 'स्वप्नके द्रष्टा आत्मामें भी दोष है । यद्यपि शरीर अन्धा होनेसे यह स्वप्नका द्रष्टा अन्धा नहीं होता, शरीरके स्राम (व्याधिपीड़ित) होनेसे यह स्राम नहीं होता, शरीरके दोषसे यह दूषित नहीं होता, शरीरके बधसे इसका बध नहीं होता तथापि यह नाश होता हुआ-सा, भागता हुआ-सा, शोकग्रस्त होता हुआ-सा और रोता हुआ सा लगता है इससे मैं इसमें भी कोई आनन्द नहीं देखता ।'

इस प्रकार विचारकर इन्द्र हाथमें समिधा लेकर फिर प्रजापतिके समीप आया और प्रजापतिके पूछनेपर उसने अपनी शंका उनको सुनायी

प्रजापतिने कहा—'इन्द्र ! ठीक यही बात है । स्वप्नका द्रष्टा आत्मा नहीं है । मैं तुम्हें फिर उपदेश करूँगा, तुम फिर बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतसे यहाँपर रहो ।'

इन्द्र तीसरी बार बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यके साथ फिर रहा। इसके बाद प्रजापतिने कहा–'जिसमें यह जीव निद्राको प्राप्त होकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके व्यापार शान्त हो जानेके कारण सम्पूर्ण रीतिसे

निर्मल और पूर्ण होता है और स्वप्नका अनुभव नहीं करता, यह आत्मा है, अभय है, अमृत है, यही ब्रह्म है ।'

इन्द्र आत्माका यथार्थ स्वरूप समझमें आ गया मानकर शान्त हृदयसे स्वर्गकी ओर चला परन्तु देवताओंके पास पहुँचनेके पहले ही मार्गमें विचार करनेपर उसे सुषुप्ति-अवस्थामें पड़े हुए जीवको आत्मा समझनेमें दोष दीख पड़ा । उसने सोचा कि 'सुषुप्ति-अवस्थामें आत्मा जाग्रत् और स्वप्नकी तरह 'यह मैं हूँ' ऐसा अपनेको नहीं जानता । न इन भूतोंको जानता है और उसमेंसे विनाशको ही प्राप्त होता है । यानी सुषुप्ति-अवस्थाका सुख भी निरन्तर नहीं भोग सकता अतएव इसमें भी कोई आनन्द नहीं दीखता ।'

इस प्रकार विचारकर इन्द्र समित्पाणि होकर चौथी बार फिर प्रजापतिके पास आया । उसे देखकर प्रजापतिने कहा—'तुम तो शान्त हृदयसे चले गये थे, लौटकर कैसे आये ?' इन्द्रने कहा—'भगवन् ! इस सुषुप्तिमें स्थित यह आत्मा जाग्रत् और स्वप्नमें जैसे अपनेको जानता है वैसा वहाँ 'यह मैं हूँ' यों नहीं जानता, इन भूतोंको भी नहीं जानता और इस अवस्थामेंसे इसका विनाश-सा भी होता है अतएव मैं इसमें भी कोई आनन्द नहीं देखता ।'

प्रजापतिने कहा—'इन्द्र ! ठीक है । सुषुप्तिमें पड़ा हुआ जीव वास्तवमें आत्मा नहीं है । मैं तुम्हें फिर इसी आत्माका ही उपदेश करूँगा, किसी दूसरे पदार्थका नहीं । तुम यहाँ पाँच सालतक फिर ब्रह्मचर्यव्रतसे रहो ।'

तीन बार बत्तीस-बत्तीस वर्षका ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेपर भी प्रतिबन्धकरूप तनिक-से भी हृदयके मलको नाश करके प्रकृत अधिकारी बनानेके हेतुसे फिर पाँच वर्ष ब्रह्मचर्यके लिये प्रजापतिने आज्ञा दे दी। पूरे एक सौ एक वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर चुकनेपर प्रजापतिने कहा—'इन्द्र ! यह शरीर मर्त्य है, सर्वदा मृत्युसे ग्रस्त है, तो भी यह अमृतरूप तथा अशरीरी आत्माका अधिष्ठान (रहने और भोगादि भोगनेका स्थान) है । यह अशरीरी आत्मा जब अविवेकसे सशरीर अर्थात् शरीरमें आत्मभाव रखनेवाला होता है, तभी सुख-दुःखसे ग्रस्त होता है । जहाँतक देहात्मबोध रहता है वहाँतक सुख-दुःखसे छुटकारा नहीं मिल सकता । विज्ञानसे जिसका देहात्मभाव नष्ट हो गया है उस अशरीरीको निःसन्देह सुख-दुःख कभी स्पर्श नहीं कर सकते ।' इसके बाद वायु, अभ्र और विद्युदादिका दृष्टान्त देते हुए अन्तमें प्रजापतिने कहा, 'इस शरीरमें जो मैं देखता हूँ ऐसे जानता है वह आत्मा है और नेत्र उसके रूपके ज्ञानका साधन है; जो इस गन्धको मैं सूँघता हूँ ऐसे जानता है वह आत्मा है और गन्धके ज्ञानके लिये नासिका है; जो मैं इस वाणीका उच्चारण करता हूँ ऐसे जानता है वह आत्मा है और उसके उच्चारणके लिये वाणी है; जो मैं सुनता हूँ ऐसे जानता है वह आत्मा है और उसके श्रवणके लिये श्रोत्र हैं; जो जानता है कि मैं आत्मा हूँ वह आत्मा है और मन उसका दैवी चक्षु है । अपने स्वस्वरूपको प्राप्त वह मुक्त इस अप्राकृत चक्षुरूपी मनके द्वारा इन भोगोंको देखता हुआ आनन्दको प्राप्त होता है ।' यही आत्मतत्त्व है ।

इसलिये प्रजापतिने हम लोभियोंको 'दान' करनेका उपदेश किया है। यह निश्चय कर वे अपनेको सफलमनोरथ मानकर चलने लगे, तब प्रजापतिने उनसे पूछा 'तुमलोग मेरे कथनका अर्थ समझकर जा रहे हो न?' संग्रहप्रिय मनुष्योंने कहा 'जी हाँ, समझ गये, आपने हमें दान करनेकी आज्ञा दी है।' यह सुनकर प्रजापति प्रसन्न होकर बोले—'हाँ, मेरे कहनेका यही अर्थ था, तुमने ठीक समझा है। अब इसके अनुसार चलना, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।'

इसके पश्चात् असुरोंने प्रजापतिके पास जाकर प्रार्थना की 'भगवन्! हमें उपदेश कीजिये।' इनको भी प्रजापतिने 'द' अक्षरका ही उपदेश किया। असुरोंने समझा, 'हम लोग स्वभावसे ही हिंसावृत्तिवाले हैं, क्रोध और हिंसा हमारा नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने हमें इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये कृपा करके जीवमात्रपर दया करनेका ही उपदेश दिया है।' यह विचारकर वे जब चलनेको तैयार हुए तब प्रजापतिने यह सोचकर कि ये लोग मेरे उपदेशका अर्थ समझे या नहीं, उनसे पूछा 'तुम जा रहे हो, परन्तु बताओ, मैंने तुम्हें क्या करनेको कहा है?' तब हिंसाप्रिय असुरोंने कहा 'देव! आपने हम हिंसकोंको 'द' कहकर प्राणिमात्रपर 'दया' करनेकी आज्ञा की है। यह सुनकर प्रजापतिने कहा 'वत्स! तुमने ठीक समझा, मेरे कहनेका यही तात्पर्य था। अब तुम द्वेष छोड़कर प्राणिमात्रपर दया करना, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।'

देव दनुज मानव सभी लहैं परम कल्यान।
पढ़ैं जो 'द' अर्थको दमन दया अरु दान॥

(बृहदारण्यक उपनिषद्के आधारपर)

(११)

परम धन

महर्षि याज्ञवल्क्यके दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था मैत्रेयी और दूसरीका कात्यायनी। दोनों ही सदाचारिणी और पतिव्रता थीं परन्तु इन दोनोंमें मैत्रेयी तो परमात्माके प्रति अनुरागिणी थीं और कात्यायनीका मन संसारके भोगोंमें रहता था। महर्षि याज्ञवल्क्यने संन्यास ग्रहण करते समय मैत्रेयीको अपने पास बुलाकर कहा कि 'हे मैत्रेयी! मैं अब इस गृहस्थाश्रमको छोड़कर संन्यास ग्रहण

करना चाहता हूँ । तुम दोनों मेरे पीछेसे आपसमें झगड़ा न कर सुखपूर्वक रह सको इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुम दोनोंको घर-की सम्पत्ति आधी-आधी बाँट दूँ ।'

स्वामीकी बात सुनकर मैत्रेयीने अपने मनमें सोचा कि 'मनुष्य अपने पासकी किसी वस्तुको तभी छोड़नेको तैयार होता है जब उसको पहलीकी अपेक्षा कोई अधिक उत्तम वस्तु प्राप्त होती है । महर्षि घर-बारको छोड़कर जा रहे हैं अतएव इनको भी कोई ऐसी वस्तु मिली होगी, जिसके सामने घर-बार सब तुच्छ हो जाते हैं, अवश्य ही इनके जानेमें कोई ऐसा बड़ा कारण होना चाहिये ।' और वह परम वस्तु जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति पाकर अमृतत्वको—परमात्माको पाना ही है । यों विचारकर मैत्रेयीने कहा—'भगवन् ! मुझे यदि धनधान्यसे परिपूर्ण समस्त पृथ्वी मिल जाय तो क्या उससे मैं अमृतत्वको पा सकती हूँ ?' याज्ञवल्क्यने कहा—'नहीं, नहीं ! धनसहित पृथ्वीकी प्राप्तिसे तेरा धनिकोंका-सा जीवन हो सकता है, परन्तु उससे अमृतत्व कभी नहीं मिल सकता ।' मैत्रेयीने कहा—

सा होवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति । (बृह० २ । ४ । ३)

'जिससे मेरा मरना न छूटे, उस वस्तुको लेकर क्या करूँ ? हे भगवन् ! आप जो जानते हैं (जिस परम धनके सामने आपको यह घर-बार तुच्छ प्रतीत होता है और बड़ी प्रसन्नतासे आप सबका त्याग कर रहे हैं) वही परम धन मुझको बतलाइये ।'

याज्ञवल्क्यने कहा—

स होवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एह्यास्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति ॥
(बृह० २ । ४ । ४)

'मैत्रेयी ! पहले भी तू मुझे बड़ी प्यारी थी, तेरे इन वाक्योंसे यह प्रेम और भी बढ़ गया है । तू मेरे पास आकर बैठ, मैं तुझे अमृतत्वका उपदेश करूँगा । मेरी बातोंको भलीभाँति सुनकर उनका मनन कर !' इतना कहकर महर्षि याज्ञवल्क्यने प्रियतम-रूपसे आत्माका वर्णन आरम्भ किया । उन्होंने कहा—

स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ।

'मैत्रेयी ! (स्त्रीको) पति पतिके प्रयोजनके लिये प्रिय नहीं होता परन्तु आत्माके प्रयोजनके लिये पति प्रिय होता है !'

इस आत्मा शब्दका अर्थ लोगोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे किया है, कुछ कहते हैं कि आत्मासे यहाँपर शरीरका लक्ष्य है । यह शिश्नोदरपरायण पामर पुरुषोंका मत है । कुछ कहते हैं कि जबतक अन्दर जीव है तभीतक संसार है, मरनेके बाद कुछ भी नहीं; इसलिये यहाँ इसी जीवका लक्ष्य है । यह पुनर्जन्म न माननेवाले जडवादियोंका मत है । कुछ लोग 'आत्माके लिये' का अर्थ करते हैं कि जिस वस्तु या जिस सम्बन्धीसे आत्माकी उन्नति हो, आत्मा अपने स्वरूपको पहचान सके वही प्रिय है ।* इसीलिये कहा

* गोसाईं तुलसीदासजीने सम्भवतः ऐसे ही विचारको लक्ष्यमें रखकर भक्तकी दृष्टिसे कहा है कि—

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥

गया है कि 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्' यह तीव्र मुमुक्षु पुरुषोंका मत है ।

कुछ तत्त्वज्ञोंका मत है कि आत्माके लिये इस अर्थमें कहा गया है कि इसमें आत्मतत्त्व है, यह आत्माकी एक मूर्ति है । मित्रकी मूर्तिको कोई उस मूर्तिके लिये नहीं चाहता परन्तु चाहता है मित्रके लिये । संसारकी समस्त वस्तुएँ इसीलिये प्रिय हैं कि उनमें केवल एक आत्मा ही व्यापक है या वे आत्माके ही स्वरूप हैं । महर्षि याज्ञवल्क्यने फिर कहा—

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति, न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति, न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति, न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति, न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति, न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति, न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु

तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषन बंधु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि भये मुद-मंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ॥

(विनयपत्रिका)

कामाय देवाः प्रिया भवन्ति, न वा अरे वेदानां कामाय वेदाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय वेदाः प्रिया भवन्ति, न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति, न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।

(बृह० २।४।५)

'अरे, स्त्री स्त्रीके लिये प्रिय नहीं होती परन्तु वह आत्माके लिये प्रिय होती है, पुत्र पुत्रोंके लिये प्रिय नहीं होते परन्तु वे आत्माके लिये होते हैं, धन धनके लिये प्यारा नहीं होता परन्तु वह आत्माके लिये प्रिय होता है, ब्राह्मण ब्राह्मणके लिये प्रिय नहीं होता परन्तु वह आत्माके लिये प्रिय होता है, क्षत्रिय क्षत्रियके लिये प्रिय नहीं होता परन्तु वह आत्माके लिये प्रिय होता है, लोक लोकोंके लिये प्रिय नहीं होते परन्तु आत्माके लिये प्रिय होते हैं, देवता देवताओंके लिये प्रिय नहीं होते परन्तु आत्माके लिये प्रिय होते हैं, वेद वेदोंके लिये प्रिय नहीं हैं परन्तु आत्माके लिये प्रिय हैं, भूत भूतोंके लिये प्रिय नहीं हैं परन्तु आत्माके लिये प्रिय होते हैं, अरे मैत्रेयी! सब कुछ उनके लिये ही प्रिय नहीं होते परन्तु सब आत्माके लिये ही प्रिय होते हैं। यह परम प्रेमका स्थान आत्मा ही वास्तवमें दर्शन करने योग्य, श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य और निरन्तर ध्यान करने योग्य है। हे मैत्रेयी! इस आत्माके दर्शन-श्रवण-मनन और साक्षात्कारसे ही सब कुछ जाना जा सकता है।' यही ज्ञान है।

इसके पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्यजीने सबका आत्माके साथ अभिन्न रूप बतलाते हुए इन्द्रियोंका अपने विषयोंमें अधिष्ठान बतलाया और तदनन्तर ब्रह्मकी अखण्ड एकरस सत्ताका वर्णनकर अन्तमें कहा कि 'जबतक द्वैतभाव होता है तभीतक दूसरा दूसरेको देखता है; दूसरा दूसरेको सूँघता है; दूसरा दूसरेको सुनता है; दूसरा दूसरेसे बोलता है; दूसरा दूसरेके लिये विचार करता है और दूसरा दूसरेको जानता है, परन्तु जब सर्वात्मभाव प्राप्त होता है, जब समस्त वस्तुएँ आत्मा ही हैं ऐसी प्रतीति होती है तब वह किससे किसको देखे ? किससे किसको सूँघे ? किससे किसके साथ बोले ? किससे किसका स्पर्श करे तथा किससे किसको जाने ? जिससे वह इन समस्त वस्तुओंको जानता है उसे वह किस तरह जाने ?'

वह आत्मा अग्राह्य है इससे उसका ग्रहण नहीं होता; वह अशीर्य है इससे वह शीर्ण नहीं होता; वह असङ्ग है इससे कभी आसक्त नहीं होता; वह बन्धनरहित है इससे कभी दुखी नहीं होता और उसका कभी नाश नहीं होता। ऐसे सर्वात्मरूप, सबके जाननेवाले आत्माको किस तरह जाने ? श्रुतिने इसीलिये उसे 'नेति' 'नेति' कहा है, वह आत्मा अनिर्वचनीय है। मैत्रेयी ! बस, तेरे लिये यही उपदेश है, यही तो मोक्ष है।

इतना कहकर याज्ञवल्क्यजीने संन्यास ले लिया और वैराग्यके प्रताप तथा ज्ञानकी उत्कट पिपासाके कारण स्वामीके उपदेशसे मैत्रेयी परम कल्याणको प्राप्त हुई ! (बृहदारण्यक उपनिषद्के आधारपर)

---

(१२)

घोड़ेके सिरसे उपदेश

अश्विनीकुमार देवलोकके चिकित्सक हैं । इन्होंने दैव-अथर्वण ऋषिके शिष्य दध्यङ् अथर्वण ऋषिसे वेदाध्ययन किया था। दध्यङ् ऋषि ब्रह्मज्ञानी थे परन्तु वैराग्यादि साधनोंके अभावमें अश्विनी-कुमारोंको अनधिकारी समझकर उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं किया था । विद्याके अभिमानमें एक समय अश्विनीकुमारोंने इन्द्रका अपमान किया तब इन्द्रने इन्हें यज्ञभागसे बहिष्कृत कर दिया । तबसे इनको किसी भी यज्ञमें भाग मिलना बन्द हो गया । इन्होंने नाराज होकर गुरु दध्यङ् ऋषिसे इन्द्रसे लड़कर उसे जीतने अथवा ओषधि आदिके द्वारा इन्द्रका विनाश करनेकी आज्ञा चाही । दध्यङ् ऋषि महान् पुरुष थे, उन्होंने काम-क्रोधादिकी निन्दा

करते हुए अश्विनीकुमारोंको अन्यान्य उपायोंसे सफलता प्राप्त करनेकी आज्ञा दी और यह कहा कि तुम लोग यदि हृदयके अभिमान कामक्रोधादि दोषोंसे रहित और वैराग्ययुक्त होकर मुझसे पूछोगे तो मैं तुम्हें अधिकारी पाकर दुर्लभ ब्रह्मविद्याका उपदेश करूँगा। पश्चात् गुरुकी आज्ञासे अश्विनीकुमारोंने च्यवन ऋषिके नेत्र अच्छे कर दिये और च्यवनजीने अपने तपोबलसे उन्हें यज्ञमें अधिकार दिला दिया। इस प्रकार बिना ही लड़ाईके अश्विनीकुमारोंका मनोरथ सिद्ध हो गया।

एक समय इन्हीं दध्यङ् ऋषिके आश्रममें इन्द्र आया। अतिथिवत्सल ऋषिने इन्द्रसे कहा कि 'आप मेरे अतिथि हैं जो कुछ कहिये सो मैं करूँ।' इन्द्रने कहा—'मुझे ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये।' दध्यङ् ऋषि दुविधामें पड़ गये। वचन देकर नहीं करते हैं तो वाणी असत्य होती है, और उपदेशके योग्य अधिकारी इन्द्र है नहीं। आखिर उन्होंने वचनको सत्य रखनेके लिये उपदेश देनेका निश्चय किया, और भलीभाँति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। उपदेश करते समय ऋषिने प्रसंगवश भोगोंकी निन्दा की, और भोगदृष्टिसे इन्द्रको और एक कुत्तेको एक-सा सिद्ध किया। इन्द्र ब्रह्मविद्याका अधिकारी तो था ही नहीं, स्वर्गादि भोगोंकी निन्दा सुनकर उसे क्रोध आ गया, और उसने दध्यङ् ऋषिपर कई तरहसे सन्देह करके निन्दा, शाप और हत्याके डरसे उन्हें मारनेकी इच्छा तो छोड़ दी परन्तु उनसे यह कहा कि यदि आप इस ब्रह्मविद्याका उपदेश किसी दूसरेको करेंगे तो मैं उसी क्षण वज्रसे आपका सिर उतार दूँगा।'

क्षमाशील ऋषिने शान्तहृदयसे इन्द्रकी बात सुनकर बिना ही किसी क्षोभ या क्रोधसे उससे कहा, 'अच्छी बात है, हम किसीको उपदेश करें तब सिर उतार लेना।' इस बर्तावका इन्द्रपर प्रभाव पड़ा और वह शान्त होकर स्वर्गको लौट गया।

कुछ दिनों बाद अश्विनीकुमारोंने वैराग्यादि साधनोंसे सम्पन्न होकर ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये गुरुके चरणोंमें उपस्थित होकर अपनी इच्छा जनायी और ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की। इसपर सत्यपरायण दध्यङ्ने सोचा कि 'इनको उपदेश न देनेसे मेरा वचन असत्य होगा और उपदेश करनेपर इन्द्र मेरा सिर उतार लेगा। वचन असत्य होनेकी अपेक्षा मर जाना उत्तम है। प्रतिज्ञा-भंग और असत्यका जो महान् दोष होता है उसके सामने मृत्यु क्या चीज है। शरीरका नाश तो एक दिन होगा ही।' यह विचारकर उन्होंने उपदेश देना निश्चय कर लिया और अश्विनीकुमारोंको इन्द्रके साथ जो बातचीत हुई थी वह कहकर सुना दी। अश्विनीकुमारोंने पहले तो कहा कि 'भगवन्! आप हम लोगोंको अब कैसे उपदेश देंगे। क्या आपको इन्द्रके वज्रसे मरनेका डर नहीं है?' परन्तु जब दध्यङ् ऋषिने कर्मवश शरीरधारीके मृत्युकी निश्चयता, परमार्थरूपसे निःसारता और सत्यकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी तब अश्विनीकुमारोंने कहा, 'भगवन्! आप किञ्चित् भी भय न करें। हम एक कौशल करते हैं, जिससे न आपकी मृत्यु होगी और न हमें ब्रह्मविद्यासे वञ्चित होना पड़ेगा।

हम पृथक्-पृथक् हुए अंगोंको जोड़कर जीवित करनेकी विद्या जानते हैं। पहले हम इस घोड़ेका सिर उतारते हैं, फिर आपका सिर उतारकर इस घोड़ेकी धड़पर रख देते हैं और घोड़ेका सिर आपके धड़से जोड़ देते हैं। आप घोड़ेके सिरसे हमें ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये। फिर जब इन्द्र आकर आपका घोड़ेवाला सिर काट देगा तब हम पुनः उसका सिर उतारकर आपके धड़से जोड़ देंगे और इन्द्रके द्वारा काटा हुआ घोड़ेका सिर घोड़ेकी धड़से जोड़ देंगे। न घोड़ा ही मरेगा और न आपको ही कुछ होगा।' दध्यङ् ऋषिने इस प्रस्तावको स्वीकार करके उन्हें भलीभाँति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जब इन्द्रको इस बातका पता लगा तो इन्द्रने आकर वज्रसे दध्यङ् ऋषिके धड़से जोड़ा हुआ घोड़ेका सिर काट डाला। पश्चात् अश्विनीकुमारोंने संजीवनी विद्याके प्रभावसे घोड़ेकी धड़से जुड़ा हुआ ऋषिका सिर उतारकर उनकी धड़से जोड़ दिया और घोड़ेकी धड़पर घोड़ेका सिर रखकर उसे जोड़ दिया। दोनों जीवित हो गये।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद्के आधारपर)

(१३)

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ

एक समय प्रसिद्ध विदेह राजा जनकने बहुदक्षिण नामक बड़ा यज्ञ किया। यज्ञमें कुरु और पाञ्चाल आदि देशोंके बहुत-से ब्राह्मण एकत्र हुए। जनक राजाने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी; अन्तमें 'इन ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कौन है' यह जाननेकी इच्छासे जनक अपनी गोशालामेंसे एक हजार गौएँ निकालकर प्रत्येक गायके दोनों सींगोंमें दस-दस सोनेकी मुहरें बाँध दी और ब्राह्मणोंसे कहा कि 'हे पूजनीय ब्राह्मणो! आप लोगोंमें जो ब्रह्मिष्ठ हों वे इन गायोंको अपने घर ले जायँ।' परन्तु किसी भी ब्राह्मणका उन्हें ले जानेका साहस नहीं हुआ। अन्तमें महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने शिष्य ब्रह्मचारीसे कहा कि 'हे प्रियदर्शन! हे सामश्रवा! (सामवेदके अध्ययन करनेवाले) इन गायोंको अपने घर ले चल।' गुरुके इन वचनोंको सुनकर शिष्य उन गौओंको हाँककर गुरुके घरकी ओर ले जाने लगा। यह देखकर सभामें बैठे हुए ब्राह्मणोंको इस बातपर बड़ा क्रोध हुआ कि 'हम लोगोंके सामने 'मैं ब्रह्मिष्ठ हूँ' ऐसा याज्ञवल्क्य कैसे कह सकता है?'

महाराजा जनकके होता ऋत्विज् अश्वलने आगे बढ़कर याज्ञवल्क्यसे पूछा—

त्वं नु खलु नो याज्ञवल्क्य ब्रह्मिष्ठोऽसि ।

'हे याज्ञवल्क्य ! क्या तुम्हीं हम सबमें ब्रह्मिष्ठ हो ?' यद्यपि ये शब्द अपमानजनक थे परन्तु याज्ञवल्क्यने इस उद्धतपनसे कुछ भी विकारको न प्राप्त होकर नम्रताके साथ उत्तर दिया—

नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयं स्म ।

'भाई ! ब्रह्मिष्ठको तो हम नमस्कार करते हैं । हमें तो गौओंकी चाह है । इसीलिये हमने गौएँ ली हैं ।'

ब्रह्मनिष्ठाभिमानी अश्वल याज्ञवल्क्यको नीचा दिखानेके लिये उनसे एकके बाद एक बड़े-बड़े जटिल प्रश्न पूछने लगा । याज्ञवल्क्य सबका उत्तर तुरन्त ही देते गये । इसके बाद ऋतभाग-पुत्र आर्तभाग, लह्यपुत्र भुज्यु, चक्रपुत्र उशस्त, कुषीतकपुत्र कहोल, वचक्नुपुत्री गार्गी और अरुणपुत्र उद्दालकने कई गम्भीर प्रश्न किये और याज्ञवल्क्यसे तुरन्त उनका उत्तर पाया । सब ब्राह्मण थक गये, तब अन्तमें गार्गीने आगे बढ़कर सब ब्राह्मणोंसे कहा, 'हे पूज्य ब्राह्मणो ! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं इस याज्ञवल्क्यसे दो प्रश्न फिर करना चाहती हूँ । यदि उन दो प्रश्नोंका उत्तर यह दे सका तो फिर मैं यह मान लूँगी कि आपमेंसे कोई भी इस ब्रह्मवादीको नहीं जीत सकेंगे ।' ब्राह्मणोंने कहा 'गार्गी ! पूछ !'

गार्गीने गम्भीर स्वरसे कहा 'हे याज्ञवल्क्य ! जैसे वीरपुत्र

विदेहराज या काशिराज उतारी हुई डोरीके धनुषपर फिरसे डोरी चढ़ाकर शत्रुको अत्यन्त पीड़ा देनेवाले दो बाणोंको हाथमें लेकर शत्रुके सामने खड़ा होता है, इसी प्रकार मैं दो प्रश्नोंको लेकर तुम्हारे सामने खड़ी हूँ, तुम यदि ब्रह्मवेत्ता हो तो इन प्रश्नोंका उत्तर मुझे दो।' याज्ञवल्क्यने कहा 'गार्गी! पूछ!' गार्गी बोली—

सा होवाच यदूर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यदवाक्पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षते कस्मिꣳस्तदोतं च प्रोतं चेति। (बृह० ३।८।३)

'हे याज्ञवल्क्य! जो ब्रह्माण्डसे ऊपर है, जो ब्रह्माण्डसे नीचे है और जो इस स्वर्ग और पृथिवीके बीचमें स्थित है, तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूप है, ऐसा शास्त्र जाननेवाले लोग कहते हैं, वह 'सूत्रात्मा' (जगद्रूप सूत्र) किसमें ओतप्रोत है?'

याज्ञवल्क्यने कहा—

स होवाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदवाक्पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्यच्चेत्याचक्षत आकाशे तदोतं च प्रोतं चेति। (बृह० ३।८।४)

'हे गार्गी! जो स्वर्गसे ऊपर है, जो पृथिवीसे नीचे है और जो स्वर्ग और पृथिवीके बीचमें स्थित है, तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूप है ऐसा शास्त्रवेत्तागण कहते हैं वह व्याकृत (विकृतिको प्राप्त कार्यरूप स्थूल) जगद्रूप सूत्र अन्तर्यामीरूप आकाशमें ओतप्रोत है!' इस उत्तरको सुनकर गार्गीने कहा 'हे याज्ञवल्क्य! तुमने मेरे इस प्रश्नका ऐसा स्पष्ट उत्तर दिया,

इसके लिये तुम्हें नमस्कार है। अब दूसरे प्रश्नके लिये तैयार हो जाओ।' याज्ञवल्क्यने सरलतासे कहा 'गार्गी! पूछ।'

गार्गीने एक बार उसी प्रश्नोत्तरको फिरसे दोहराकर याज्ञवल्क्यसे कहा—

कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति।

'हे याज्ञवल्क्य! तुम कहते हो व्याकृत जगद्रूप सूत्रात्मा तीनों कालोंमें सर्वदा अन्तर्यामीरूप आकाशमें ओतप्रोत है' तो वह आकाश किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्यने कहा—

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन। (बृह० ३।८।८)

'हे गार्गी! अन्तर्यामीरूप अव्याकृतका अधिष्ठान यही वह अक्षर है, इस अविनाशी शुद्ध ब्रह्मका वर्णन ब्रह्मवेत्तागण इस प्रकार करते हैं—यह स्थूलसे भिन्न, सूक्ष्मसे भिन्न, ह्रस्वसे भिन्न, दीर्घसे भिन्न, लोहितसे भिन्न, स्नेहसे (चिकनाहटसे) भिन्न, प्रकाशसे भिन्न, अन्धकारसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, संगरहित, रसरहित, गन्धरहित, चक्षुरहित, श्रोत्ररहित, वाणीरहित, मनरहित, तेजरहित, प्राणरहित, मुखरहित, परिमाणरहित, छिद्ररहित और देश, काल, वस्तु आदि परिच्छेदसे रहित सर्व-

व्यापी अपरिच्छिन्न है, वह कुछ भी खाता नहीं और उसे भी कोई खाता नहीं, इस प्रकार वह सब विशेषणोंसे रहित एक ही अद्वितीय है।

इस प्रकार समस्त विशेषणोंका ब्रह्ममें निषेध करके अब उसका नियन्तापन बतलाते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्ता अहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्ति। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्या यां यां च दिशमनु। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दर्वीं पितरोऽन्वायत्ताः। (बृह० ३।८।९)

हे गार्गी! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञामें सूर्य और चन्द्रमा यह नियमितरूपसे वर्तते हैं। हे गार्गी! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञासे ही स्वर्ग और पृथिवी हाथमें रक्खे हुए पाषाणकी तरह मर्यादामें रहते हैं। हे गार्गी! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञामें रहकर ही निमेष, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर इस कालके अवयवोंकी गणना करनेवाले सेवककी तरह नियमितरूपसे आते-जाते हैं। हे गार्गी! इस प्रसिद्ध अक्षरके शासनमें रहकर ही पूर्ववाहिनी गङ्गा आदि नदियाँ श्वेत हिमालय आदि पहाड़ोंमेंसे निकलकर समुद्रकी ओर बहती हैं तथा पश्चिमवाहिनी सिन्धु आदि और अन्यान्य दिशाओंकी ओर बहती हुई दूसरी

नदियाँ इसी अक्षरके नियन्त्रणमें आजतक वैसे ही बहती हैं। हे गार्गी! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञासे मनुष्य दाताओंकी प्रशंसा करते हैं और इन्द्रादि देवगण, यजमान और पितृगण दर्वीके अनुगत हैं अर्थात् देवता यजमानद्वारा किये हुए यज्ञसे और पितृगण उनके लिये किये जानेवाले होममें घी डालनेकी चमचीसे यानी उस होमसे पुष्ट होते हैं।

इसके बाद याज्ञवल्क्य फिर बोले—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्मिँल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति। यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः। (बृ० ३।८।१०)

हे गार्गी! इस अक्षरको बिना जाने यदि कोई पुरुष इस लोकमें हजारों वर्षोंतक देवताओंको उद्देश्य करके यज्ञ करता है, व्रतादि तप करता है तो भी उस कर्मका फल तो अन्तवाला ही होता है। अर्थात् फल देकर वह कर्म नष्ट हो जाता है, वह अक्षय परम कल्याणको प्राप्त नहीं होता।*

---

* अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(गीता ७।२३)

परमात्माको न जाननेवाले उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है और वे (भेदभावसे) देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं (परन्तु) मेरे (भगवान्के) भक्त (किसी प्रकारसे भी भजनेवाले क्यों न) मुझको (भगवान्को) ही प्राप्त होते हैं।

हे गार्गी ! जो पुरुष इस अक्षरको नहीं जानकर (भगवत्प्राप्ति होनेसे पूर्व ही) इस लोकसे मृत्युको प्राप्त होता है वह (विचारा) कृपण (दीन, दयाके योग्य) है और हे गार्गी ! जो इस अक्षरको जानकर इस लोकमें मरणको प्राप्त होता है वह ब्राह्मण (ब्रह्मविद्, मुक्त) हो जाता है । अब याज्ञवल्क्य ब्रह्मका उपाधिरहित स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं—

तद्वा एतदक्षरं गार्ग्यदृष्टं द्रष्टृश्रुतं श्रोत्रमतं मन्त्रविज्ञातं विज्ञातृ नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ नान्यदतोऽस्ति मन्तृ नान्यदतोऽस्ति विज्ञात्रेतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्चेति । (बृह० ३ । ८ । ११)

हे गार्गी ! यह प्रसिद्ध अक्षर किसीको नहीं दीखता पर यह सबको देखता है । इसकी आवाज कानोंसे कोई नहीं सुन सकता परन्तु यह सबकी सुनता है । यह किसीकी धारणामें नहीं आता परन्तु यही सबका मन्ता है । कोई इसे बुद्धिसे नहीं जान सकता परन्तु यही सबका विज्ञाता (जाननेवाला) है । इससे भिन्न द्रष्टा नहीं है, इससे भिन्न श्रोता नहीं है, इससे भिन्न कोई मन्ता नहीं है और इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है । हे गार्गी ! वह अव्याकृत आकाश इसी प्रसिद्ध अक्षर अविनाशी ब्रह्ममें ही ओतप्रोत है ।*

---

* मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥
(गीता ७ । ७)

'भगवान् कहते हैं, हे अर्जुन ! मेरे सिवा किञ्चित् भी दूसरी वस्तु नहीं

महर्षि याज्ञवल्क्यके इस विलक्षण व्याख्यानको सुनकर गार्गी सन्तुष्ट हो गयी और प्रमुदित होकर ब्राह्मणोंसे कहने लगी कि, 'हे पूज्य ब्राह्मणो ! याज्ञवल्क्यको नमस्कार करो । ब्रह्मसम्बन्धी विवादमें इसको कोई भी नहीं हरा सकता । इसका पराजय मनकी कल्पनामें भी नहीं आ सकता।' इतना कहकर गार्गी चुप हो गयी।

इसके बाद शकलके पुत्र शाकल्य या विदग्धने याज्ञवल्क्यसे कई इधर-उधरके प्रश्न किये । अन्तमें याज्ञवल्क्यने उससे कहा कि अब मैं तुझसे एक बात पूछता हूँ, तू यदि उसका उत्तर नहीं दे सकेगा तो तेरा मस्तक कट जायगा । शाकल्य उत्तर नहीं दे सका और उसका मस्तक धड़से अलग हो गया। याज्ञवल्क्यके ज्ञान और तेजको देखकर सारी सभा चकित हो गयी । तदनन्तर याज्ञवल्क्यने फिर ब्राह्मणोंसे कहा, 'तुम लोगोंमेंसे कोई एक या सब मिलकर मुझसे कुछ पूछना हो तो पूछें' परन्तु किसीने कुछ नहीं पूछा । चारों ओर याज्ञवल्क्यकी जयध्वनि होने लगी । विज्ञानानन्दसे याज्ञवल्क्य और गार्गीका चेहरा चमक रहा था ।

इसी ब्रह्मको यथार्थरूपसे जाननेकी चेष्टा करना और अन्तमें जान लेना मनुष्य-जन्मकी सफलताका एकमात्र प्रमाण है ।

(बृहदारण्यकोपनिषद्के आधारपर)

है, यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियोंकी भाँति मुझमें ही गुँथा हुआ है।' जो भगवान्‌को इस प्रकार जानता है वही मुक्त होता है।

(१४)

सद्गुरुकी शिक्षा

वेदका अध्ययन कर चुकनेपर गुरु अपने शिष्यको नीचे लिखे वेद-धर्मोंका उपदेश करते हैं—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

(तैत्ति० १।११।१)

सत्य बोलो। धर्मका आचरण करो। स्वाध्यायका कभी त्याग न करो। आचार्यको गुरु-दक्षिणा देकर प्रजाके सूत्रको न काटो अर्थात् ब्रह्मचर्य-आश्रमका पालन कर चुकनेपर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करो। सत्यका कभी किसी अवस्थामें भी त्याग न करो। धर्मका कभी त्याग न करो। कल्याणकारी कर्मोंका त्याग न करो। साधनकी जो विभूति प्राप्त है, उसे कभी मत त्यागो। स्वाध्याय और प्रवचनमें कभी प्रमाद न करो।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि।

(तैत्ति० १।११।२)

देवकर्म (यज्ञ) और पितृकर्म (श्राद्ध, तर्पण आदि) का कभी त्याग न करो। माताको देवरूपसे पूजो। पिताको देवरूपसे पूजो। आचार्यको देवरूपसे पूजो। अतिथिको देवरूपसे पूजो। जो कर्म निन्दारहित हैं उन्हींको करो। अन्य (निन्दितकर्म) मत करो। हमारे (गुरुके) श्रेष्ठ आचरणोंका अनुसरण करो, दूसरोंका नहीं।

जो ब्राह्मण अपनेसे श्रेष्ठ हों उन्हें तुरन्त बैठनेके लिये आसन दो। जो कुछ दान करो श्रद्धासे करो, अश्रद्धासे नहीं। श्रीके लिये दान करो, (लक्ष्मी चञ्चल हैं, प्रभुकी सेवामें उसे समर्पण नहीं करोगे तो वह तुम्हें त्यागकर चली जायगी), लोक-लाजके लिये ही दान करो। शास्त्रसे डरकर भी दान करो, दान करना उचित है इस विवेकसे दान करो। अपने किसी कर्म अथवा लौकिक आचारके सम्बन्धमें मनमें कोई शंका उठे तो, अपने समीप रहनेवाले ब्राह्मणोंमें जो वेदविहित कर्मोंमें विचारशील हों, समदर्शी हों, कुशल हों, स्वतन्त्र हों (किसीके दबावमें आकर व्यवस्था देनेवाले न हों) क्रोधरहित अथवा शान्त स्वभाव हों, और धर्मके लिये ही कर्तव्यपालन करनेवाले हों, वे जिस प्रकारका आचरण करें, उसी प्रकारका आचरण तुम करो। यही आदेश है, यही उपदेश है, यही वेदोंका भाव है, यही आज्ञा है, ऊपर बतलायी हुई प्रणालीसे ही आचरण करने चाहिये। इसी प्रकार आचरण करना चाहिये।

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

वर्षा-ज्ञान।

संकलन कर्ता—

नरोत्तम गणेशदास व्यास

दारोगा—हवाला विभाग, जोधपुर.

भूमिका लेखक—

पं० नन्दकिशोरजी शर्म्मा,

डाइरेक्टर कृषि विभाग

मारवाड़ स्टेट.

प्रकाशक

मरुधर प्रकाशन मन्दिर, जोधपुर.

मुद्रक—कुँवर सरदारमल थानवी,

श्री सुमेर प्रिंटिंग प्रेस, फुलेराव की घाटी जोधपुर।

प्रथम संस्करण १००० | रक्षा बन्धन—श्रावण १६८६ | मूल्य ≈)
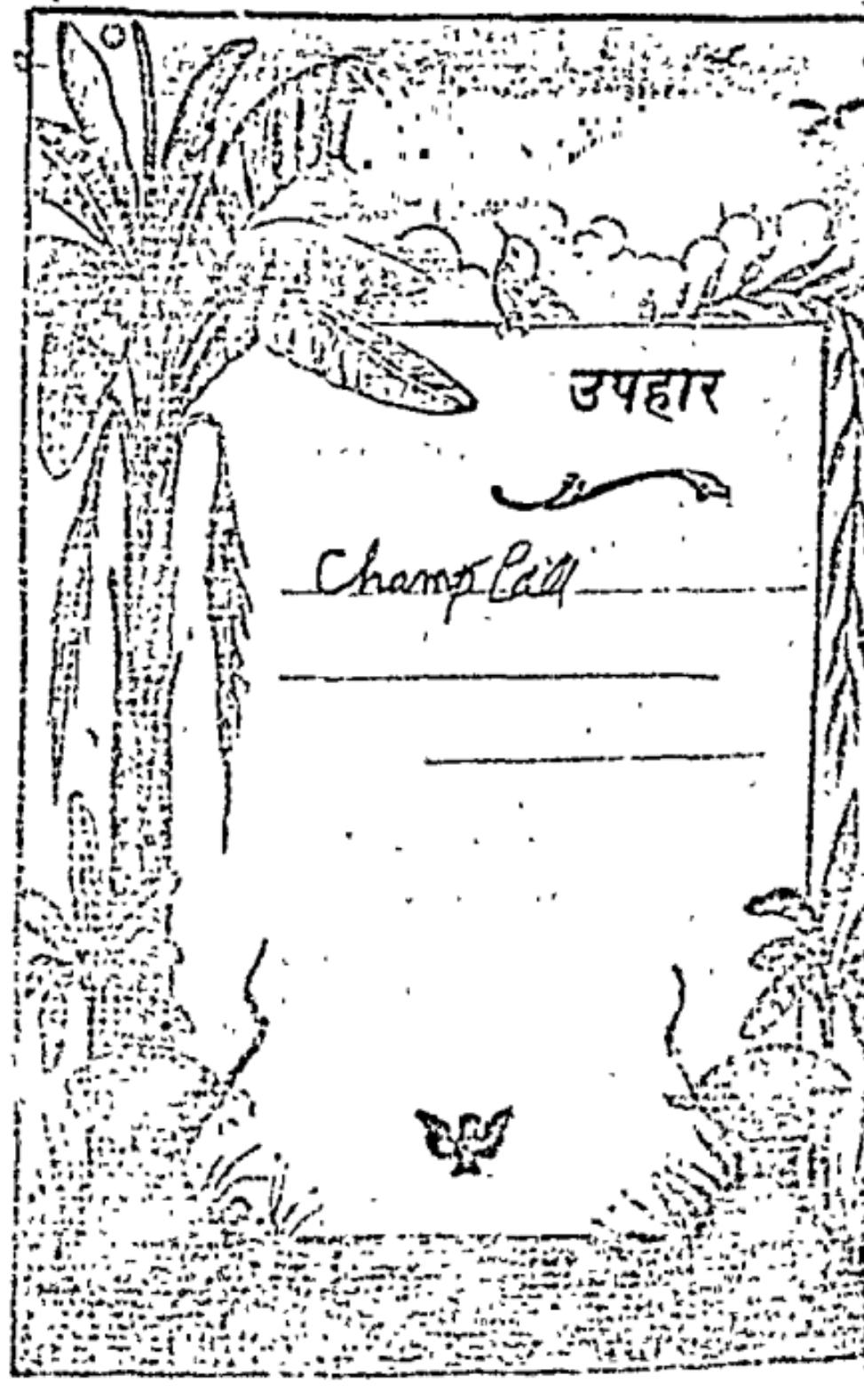
उपहार
Champ Lall

भूमिका

पं० नरोत्तमजी शर्मा जोधपुर (मारवाड़) निवासी ने इस 'वर्षा-ज्ञान' पुस्तक में वर्षा सम्बन्धी प्रचलित दोहों का संग्रह कर देश का जो उपकार किया है वह सर्वथा सराहनीय है। भारत कृषि प्रधान देश है अतः यह बहुत आवश्यक है कि कृषी सम्बन्धी ज्ञान का जितना ही प्रचार होगा उतना ही देश को लाभ है। पण्डितजी के संग्रह से यह स्पष्ट है कि प्राचीन समय में हमारे पूर्वज इस विषय में भी किसी से पीछे नहीं थे। हाँ यह बात जरूर है कि अब प्राचीन साहित्य काल-कवलित हो जाने के कारण बहुत सी तत्सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध नहीं है और ऐसी हालत में उस सम्बन्ध में खोज कर उन बातों व चिह्नों को ढूंढ निकालना जिससे सर्व साधारण को वर्षा का ज्ञान हो सके एक कठिन कार्य है और इस प्रकार ढूंढ खोज कर सर्व साधारण के लाभ के लिये उसे प्रकाशित करने में धैर्य व परिश्रम की नितान्त आवश्यकता है।

मैं कृषी सेवी होने के कारण आप लोगों से अनुरोध करता हूँ कि आप इस 'वर्षा-ज्ञान' पुस्तक से लाभ उठावें। मुझे पण्डितजी से मालूम हुआ है कि वे इन दोहों का अंग्रेजी में भाषान्तर (Translation) करा कर भी प्रकाशित करेंगे

ताकि अंग्रेजी जानने वाले अन्य लोगों को भी हमारे यहां के ज्ञान-भण्डार का अनुभव हो।

इस समय सरकार हिन्द की तरफ से जलवायु का विभाग है जहां बड़े २ धुरन्धर विद्वान् वर्षा व वायु की गति का निरीक्षण कर तत्सम्बन्धी सामाचार प्रति दिन तार व सामाचार पत्रों द्वारा देश भर में भेजते हैं, परन्तु खेद है कि हमारे ग्राम निवासी भाई जिनको कि इन सामाचारों की सब से पहिले आवश्यकता है, इन समाचारों का न तो कोई पता पाते हैं और न समझते हैं। इन सामाचार पत्रों को सब गाँवों में भेजने का प्रयास ही नहीं हैं और न वैसा करने के लिये पूरे साधन ही प्राप्त हैं। ऐसी हालत में यह "वर्षा-ज्ञान" पुस्तक अपनी हिन्दी भाषा में होने के कारण एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति करेगी और मुझे पूरा विश्वास है कि गांव २ घर २ में इस पुस्तक का प्रचार होगा और होना चाहिये।

ईश्वर पण्डित नरोत्तमजी के इस उद्योग को सफलता प्रदान करे और कृषक लोगों को इससे विशेष लाभ हो।

जोधपुर,
जुलाई २२, १९२९.

पं० नन्दकिशोर शर्मा
राव साहब, F. N. V. A. P. A. S.
कृषी विद्या सुधारक
डाइरेक्टर-कृषी विभाग
राज (मारवाड़)

—: लेखक के दो शब्द :—

जगत् का प्राण अन्न है, अन्न खेती से होता है, खेती वर्षा से होती है और वर्षा का ज्ञान शिव पार्वती सम्वाद 'मेघमाला' नामक ग्रन्थ से हो सकता है। किन्तु संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों को उसके ज्ञान से वञ्चित रहते देख भड्डली नामक एक विदुषी स्त्री ने उसके अर्थ को भाषा के दोहों में वर्णन किया है जो "भड्डली पुराण" * के नाम से प्रसिद्ध है। नन्द भारथी × आदि विद्वानों ने भी ऐसे ग्रन्थ रचे थे जिनमें से कई तो लुप्त हो गये और कई विद्यमान हैं। परन्तु, खेद है कि वे सभी ग्रन्थ पूरे नहीं मिलते और जो कुछ मिलते हैं तो उनमें ज्योतिष का विषय अधिक भरा है जिससे आजकल उनका उपयोग नहीं होता है।

इस उन्नति के युग में वैज्ञानिक विद्वानों ने वर्षा ज्ञान के लिये बहुत से यन्त्र बना दिये हैं किन्तु आर्थिक संङ्कट के कारण उन यन्त्रों का उपयोग साधारण श्रेणी के मनुष्य व विशेष करके कृषक लोग नहीं कर सकते। इसीलिये मैंने उन

---

* दन्त कथा के आधार पर—मारवाड़ में डाकोत जाति का (शनिश्चरिया थावरीया) ब्राह्मण था जिसका नाम डूङ्गड़ ज्योशी (ज्योतिषी) था उसके भड्डली नाम की पुत्री थी जो भीम नामक विद्वान् को व्याही थी। इन्हीं तीनों के परस्पर के सम्वाद से 'भड्डली पुराण' की रचना हुई है।

× नन्द भारथी ने अपने 'सम्वत्सर सार' नामक ग्रन्थ की रचना उदयपुर में की थी।

ग्रन्थों में से समयोपयोगी कुछ दोहे संग्रह किये हैं और उनको पुस्तकाकार में प्रकाशित कर रहा हूँ। ये दोहे बहुत सरल तथा सुबोध हैं तथापि उनकी हिन्दी भाषा टीका कर दी गई है जिससे इनका अर्थ समझने में कुछ भी कष्ट न हो। इस संग्रह का नाम मैंने "वर्षाज्ञान" रखा है और यह दो भागों में प्रकाशित होगा। प्रथम भागमें तो भूमि परके वृक्ष पशु, पंखी, कीट तथा मनुष्य आदि की चेष्टाओं का वर्णन है और दूसरी में अन्तरिक्ष में के वायू, बादल, बिजली, गाज, धनुष, कुण्डाला तथा मोघों आदि का वर्णन है। इनकी चेष्टाओं को 'आरख' कहते हैं। जिनके द्वारा चलते फिरते ही वर्षा का ज्ञान हो जाने से सम्वत् के सुभिक्ष दुर्भिक्ष को प्रधानत जान सकेंगे।

वर्षा जानने में ये दोहे हमारे लिये अमूल्य साधन हैं और मामूली पढ़े लिखे तथा अनपढ़ भी इन दोहों के अर्थ को समझ कर वर्ष भर का भविष्य जान सकेंगे।

इस समय 'वर्षाज्ञान' प्रथम भाग जिसमें भूमिके प्राणियों की चेष्टाओं का वर्णन है। आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ इसका द्वितीय भाग भी जिसमें अन्तरिक्ष के चिह्नों का वर्णन होगा शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी। मेरी यह दोनों पुस्तकें बहुत छोटी हैं परन्तु मुझे निश्चय है कि वे जनता के लिये हित कर होंगी।

नरोत्तम गणेशदास व्यास,

जोधपुर. जन्नी हवाला दारोगा,

राज्य (मारवाड़)

वर्षा ज्ञान

वर्षा बतलाने वाले प्राचीन दोहों का संग्रह

प्रथम पुस्तक

शिव गिरिजा करि वन्दना गुरु गणेश को ध्याय।
पितु चरण को सेवना विघ्न दूर हो जाय॥ १॥

पर ब्रह्म स्वरूप शिवजी को और माया स्वरूप आदि शक्तिःपार्वती को नमस्कार करने गुरु महाराज गणेशजी को हृदय में धारण करने और माता पिता के चरण कमलों को सिर नमाने से सर्व प्रकार के विघ्न दूर होते हैं।

वर्षा ज्ञान के ग्रन्थ जे भडली आदि प्रमान।
तिनको सार निचोर के रचियो वर्षा ज्ञान॥ २॥

राजा प्रजा हित कारने कृषक जनन हित काज।
ग्रन्थ नरोत्तम व्यास ने कियो प्रकाशित आज ॥३॥

वर्षा का भविष्य अर्थात् वृष्टि अनावृष्टि (सुभिक्ष दुर्भिक्ष) को बतलाने वाले भडली आदि के रचे हुवे भाषा के दोहों के जो ग्रन्थ हैं उनमें से साररूप संग्रह करके राजा तथा प्रजा के हित के लिये और विशेष करके खेती करने वालों के उपयोगी होने योग्य 'वर्षाज्ञान' नामक पुस्तक पुष्करणा जातीय माथावत व्यास नरोत्तम ने प्रकाशित की।

अन्न जगत् का प्राण है, खेती से अन्न होय।
खेती वर्षा से हुवे, तातें वर्षा जोय ॥ ४ ॥

जगत् का प्राण अन्न है, अन्न खेती करने से उपजता है और खेती वर्षा से होती है, इसलिये वर्षा का ज्ञान प्राप्त करे जिससे जगत् के प्राणियों का दुख दूर हो जाये।

थिर चर जेते जगत् में, सब ही चारख मान।
स्व स्वभाव सुख संचरे, उलटे तें दुख जान ॥ ५ ॥

इस सृष्टि में वृक्ष गुल्म लता आदि तो थिर और मनुष्य पशु पक्षी कीट आदि चर प्राणी हैं उनकी स्वाभाविक चेष्टाओं को राजपुताने की पुरानी भाषा में 'चारख' कहा है

उनको 'नेचर' वा 'कुदरत' के नाम से भी पुकारते हैं। ये आरख जिस समय अपनी २ स्वभाविक स्थिति में रहते हैं उस समय वर्षा अच्छी होने से सम्वत् सुभिक्ष होता है जिस से लोगों को सुख होता है और जिस समय ये अपनी २ स्वाभाविक स्थिति से विपरीत हो जाते हैं तब वर्षा न होने से दुर्भिक्ष पड़ जाता है जिससे लोगों को महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

आरख माफिक जगत में निश्चय होवे मेह।
अमे जोग वर्षा विषय मूढ़न मांहि सन्देह ॥ ६ ॥

—ऊपर बताये हुवे 'आरख' जिस प्रकार से अच्छे या बुरे होते हैं उसी प्रकार से वर्षा भी अधिक वा कम होती है। परन्तु जिन लोगों को इनका ज्ञान नहीं है वे लोग वर्षा का जोग जानने के लिए ज्योतिषियों के पास पूछने को जाते हैं परन्तु आजकल प्राय: ज्योतिषियों को इस विद्या का ज्ञान न होने से वे वर्षा पूछने वालों का सन्देह दूर नहीं कर सकते।

बिन पोथी पतड़े बिना, होय सहज में ज्ञान।
वर्ष शुभा शुभ मेघ गति जाने सकल जहान ॥ ७ ॥

इस पुस्तक द्वारा सर्व साधारण को भी उन 'आरखों' का ज्ञान सहज में हो जावेगा जिससे फिर वर्ष का शुभा शुभ तथा न्यूनाधिक वर्षा को पहिले से जान लेने के लिये न तो

ज्योतिष की पोथी पढ़नी पड़ेगी और न तिथ्यादि के लिये पंचांग ही देखना पड़ेगा। क्योंकि—

आरस आवे दृष्टि में अथवा सुनले कान।
जैसे आरस पेखि है वैसा मेह बखान ॥ ८ ॥

ये आरस चलते फिरते ही सहज में देखने में आ जाते हैं अथवा दूसरों के देते हुये सुनने में आ जाते हैं अतः जैसे देखे या सुने जावें उसी प्रकार वर्ष का भविष्यफल जगत के हितार्थ प्रगट कर दें।

आरस दैवी यन्त्र है बिना कष्ट मध जाय।
आरस ज्ञानी पुरुष की वाणी वृथा न जाय ॥ ९ ॥

इस पुस्तक में बताये व सभी प्रकार के आरस ईश्वरीय या कुदरती यन्त्र हैं इनकी चेष्टाओं का फल सदा सत्य होता है और इनका ज्ञान प्राप्त करने में कुछ भी परिश्रम करना नहीं पड़ता इतना ही नहीं किन्तु उन आरस वालों की वाणी वर्षा बतलाने में कभी भी खाली नहीं जाती।

जग में जस फैले प्रबल आदर पावे राज।
गुरु सम्पत घर में बढ़े सिद्ध होय सब काज ॥ १० ॥

आरखा ज्ञानी का जगत् में यश फैलता है, राज से मान मिलता है घर में सुख सम्पति की वृद्धि होती है और उसके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते रहते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को और विशेष करके खेती करने वाले को तो आरखों का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये इसी में उनका भला है।

वर्षा के लिये वृक्षों की चेष्टा

पान झड़े भूपर पड़े वृक्ष नगन होजाय।
तो निश्चय कर जानिये सही जमानो थाय ॥ १ ॥
माघ फागुण अरु चैत्र में बिरछां झड़े न पान।
गायां तरसे घास बिन नर तरसे बिन धान ॥ २ ॥

माघ, फाल्गुन, और चैत्र के महीनों में वृक्षोंके पुराने पत्ते भूमि पर गिर पड़े तो धान्य तथा घास उत्पन्न होने योग्य अच्छी वर्षा होवे और जो इन तीन महीनों में वृक्षों के पुराने पत्ते न झड़ें तो वर्षा न होने से दुष्काल पड़े जिससे पशु तो चारे बिना और मनुष्य धान्य बिना कष्ट भोगें।

मधू मास वैशाख में सब फूले बन राय।
प्रजा सुखी राजा सुखी सुखिया गोधा गाय ॥ ३ ॥

जो वसन्त फूले नहीं फले नहीं वनराय।
प्रजा दुखी राजा दुखी दुखिया गोधा गाय ॥ ४ ॥

चैत्र वैशाख के महीनों में जंगल की सब वनस्पतियों फूलें फलें तो ऐसा सम्वत होवे की राजा प्रजा तथा गवादि पशु सुखी होजावें और जो वनस्पतियों पर फूल फल न लगें तो ऐसा दुष्काल पड़े कि राजा प्रजा तथा गवादि पशुओं को कष्ट भोगना पड़े।

अर्ध वृक्ष फूले फले आधो अफल रहाय।
तो जाणिजे माघजी वर्ष करवरो जाय ॥ ५ ॥
फूल भारतो करवरो फल सूखा कण हाण।
भेद बताऊं माघजी वृक्षाँ पह सहिपाण ॥ ६ ॥

यदि आधे वृक्षों में तो फल फूल लगें, आधों में नहीं लगें तो आधा संवत होवे। अथवा फूल कम लगे तो फसल आधी होवे और जो फल लग कर वृक्षों पर ही सूख जाय तबतो धान्य उत्पन्न ही नहीं होवे।

बिरछाँ लम्बी कूंपलाँ जो फलफूल न होय।
घास घणा सुण माघजी अन्न न निपजे कोय ॥ ७ ॥

यदि वृक्षों के कूपलें तो लम्बीरनिकलें परन्तु फल फूल कुछ भी न लगे तो घास फूस तो बहुत होवे किन्तु धान्य कुछ भी पैदा न होवे।

वृक्षन फल विपरीत जब उलट पुलट लागन्त।
पड़े काल भय भीत यों आगम लखियो मिन्त ॥ ८ ॥

जब कभी वृक्षों पर फलफूल एक दूसरे के विपरीत उलट पुलट लगे अथवा बिना ऋतु में फलें तो बड़ा भयानक अकाल पड़े।

नींमसे से वर्षा का ज्ञान

निंबां अधर निंबोली सूखे काल पड़े कबहूं नही चूके।
आधो पकियो आधो सूखे कठेक निपजे कठेक डूके॥ ९ ॥

नींब की नींबोलियें पककर जमीन पर न गिरके वृक्ष परही सूख जाय तो जरूर दुर्भिक्ष पड़े और जो कुछ नींबोली तो पक कर नीचे गिरें और कुछ वृक्ष पर ही सूखें तो कहीं संवत अच्छा और कहीं दुष्काल ऐसा क़ुरा जमाना होवे।

बोर वो खेजड़ी से वर्षा का ज्ञान

चन बेरी अरु खेजड़ी सकल पात झड़जाय।
शुभ आरख आषाढ़ यह समो सरस निपजाय ॥ १०

चन बेरी अरु खेजड़ी अर्ध पात झड़ जाय।
अर्ध पात साबित रहैं करसन नमो कहाय ॥ ११ ॥
चन बेरी फूले फले पौ खेजड़ डह गद।
नही अंकुरे वड़ जटन यह दुर्भिक्ष हर उद ॥ १२ ॥

आषाढ़ के महीने में जंगल की झाड़ बेरी (छोटी बेरी) के और खेजड़ियों के सब पत्ते गिर जाय तो संवत बहुत अच्छा होगा। और जो आधे पत्ते तो गिर पड़ें और आधे पत्ते वृक्षों पर ही लगे रहैं तो फुर्रा जमाना होवे और जो चन बेरी तथा खेजड़ियों के पत्ते खूब हरे भरे हो जावें तथा उनके फल फूल लगे ऐसे ही बड़ वृक्ष की जटाओं में नवीन अंकुर न निकले तो वर्षा बिलकुल न होवे जिससे बड़ा भयानक दुर्भिक्ष पड़ जावे।

आम से वर्षा का ज्ञान

अपने अपने देश में देख आंब फल फूल।
जा दिशि डार सु निर्फली वा दिशि मेह न मूल ॥ १० ॥

अपने २ देश में आम के वृक्षों को देखे उनकी डालियों में जिस दिशा में फल फूल न लगे हों उस दिशा में वर्षा न होवे और जिस दिशा में फल फूल लगे हों उस दिशा में वर्षा अच्छी होवे।

——:o:——

वर्षा के लिये पशुओं की चेष्टा।

रातूं सांड शब्द जो करे, सुख सम्पति की आशा सरे।
रातूं गाय पुकारे बांग, काल पड़े के अदुभुत सांग ॥१॥

रात्रि में सांड (बैल) शब्द करे तो जगत् में सुख तथा सम्पति की वृद्धि होवे और जो रात्रि में गाय शब्द करे तो दुर्भिक्ष पड़े या कोई और उपद्रव होवे जिससे लोगों को कष्ट भोगना पड़े।

अजिया के सुत दोय हों रामयो सखरो जोय।
तीन जने शिशु बाकरी तो घृत मँहगो होय ॥ २ ॥

बकरी के बच्चे दो हों तो जमाना अच्छा होवे और जो तीन बच्चे होवें तो घृत महगा हो जावे।

मंजारी के एक सुत माघ जानिये काल।
दोयों होसी करबरो तीनों होय सुगाल ॥ ३ ॥
चार जणे मंजारडी चार श्वानडी जोय।
कहै फोगसी माघजी समयो सखरो होय ॥ ४ ॥

बिल्ली के बच्चा एक हो तो दुर्भिक्ष पड़े दोय हो तो करबरा जमाना होवे और जो तीन बच्चा हो तो सुभिक्ष होवे। यदि

बिल्ली के चार बच्चे होवे तो बहुत अच्छा सुभिक्ष होवे। ऐसे ही कुतिया के बच्चे होवे तो सुभिक्ष होवे और जो ५-६ ७-या-८ होवे तो युद्ध आदि उपद्रव होवे।

जंबुकनी बोले दुख दाय, राज विग्रह दुर्भिक्ष थाय।
दिन में स्याल शब्द जो करे, निश्चय काल हलाहल पड़े॥५॥

यदि स्यालनी दुःखी होकर शब्द करे तो राज विग्रह तथा दुर्भिक्ष होवे। और दिन में स्याल शब्द करे तो दुर्भिक्ष पड़े।

ठंड पड़े पाणी जमै पोप माघ मे जोय।
रातूं टउके लूंकड़ी सही जमांनो होय॥ ६॥
धुर बरसाले लूकड़ी ऊंचो बिल खिणन्त।
भेली होयर बल फरे जल धर अति जाणन्त॥ ७॥
अथवा कुआ ना खिणै तो बरसा नह्न्त।

पौष माघ में (शीत काल में) ठंड पड़े जिससे पानी जम जाय और रात्रि के समय लोमड़ी शब्द करे तो आगे वर्षा काल में अच्छी वर्षा होवे। ऐसे ही लोमड़ी वर्षा काल के प्रारम्भ में ऊंचे स्थल पर गुफा बनावे या बहुत सी इकट्ठी होकर आपस में खेल करे तो वर्षा अच्छी होवे। और जो गुफा नहीं बनावे तो वर्षा नहीं होवे।

वर्षा के लिये पक्षियों की चेष्टा।

प्रात चैत वैशाख में वन पक्षी ध्वनि धीर।
सखरे बोल सुहावने श्रावण वर्षे नीर॥ १॥

प्रातः काल के समय चैत्र व वैशाखमें वनके पक्षी मधुर शब्द करें तो श्रावण मास में वर्षा अच्छी होवे।

करे घोंसले घर विषय चिड़ियन आगम जान।
मास चार निर्झड़ झरे अन धन अधिक बखान॥ २॥

करे परलसे पीछले मेघ पिछाडी होय।
आगे आगम जानिये कहे लोग सब कोय॥ ३॥

करे घोंसला भीत में करसन समो सुजान।
करमा धरगी नीपजे जैसो समो बखान॥ ४॥

वर्षा कालके पहिले घरमें की चिड़ियें घोंसले (माले)घर के भीतर कोठे आदि में बनावें तो वर्षा चारों महिनों में अच्छी होवे जिससे धन धान्य की वृद्धि होवे। घोंसले यदि घरके पिछले भागमें बनावें तो वर्षा भी पीछेसे होवे और जो अगले भागमें बनावें तो वर्षा पहिले होवे। और घोंसले घरकी

बाजूकी भीतमें बनावे तो गेतिये कहीं तो पैदा होवे और कहीं नहीं होवे ऐसी वर्षा होवे।

अस्त समय कुकुट चवे विघन नगर में होय।
छत्र पड़े दुर्भिच करे मरी वरको होय ॥ ५ ॥

मुर्गा यदि सूर्यास्त के समय शब्द करेतो गांव में विघ्न महामारी, राजमृत्यु आदि उपद्रव होवे अथवा दुर्भिक्ष पड़जावे।

कालचिड़ी के अँडा एक। रसकस सत्ता अन्न विशेक।
कालचिड़ी के अँडे दोय। खड़ थोड़ा पर अन कछु होय ६॥
कालचिड़ी के अँडे तीन। आधो काल भाषजी चीन।
अंडा चार कालकी धरे। जूंसेराव देश वित हरे ॥ ७ ॥

/ काली चिड़िया के अँडा एक हो तो सुभिक्ष व रसकस मंदे होवें। दो अँडे हों तो घास कम पैदा होवे परन्तु धान्य पैदा हो जावे। और तीन अँडे हों तो आधा संवत होवे और जो चार अँडे हों तो बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़े।

काल चिड़ी के अंड तल उन केश जट जांय।
जिग जिख रा मुण केश ही मरी रोग अति होय ॥८
घृत रूत नालेर जट मर्ज शिखा जो होय।
शण रेशम अंबाडि वृक्ष सोहि महघतां होय ॥ ६ ॥

घासफूस जड़ तूलहो तो जानो तृण हान ।
ग्वाल कहे सुन माघजी कालचिडी सहि जान ॥ १० ॥

काल चिड़ी के अँडों के नीचे जिन जिन जीवों के केश ऊन जट आदि हों, उनर जीवों में मरी आदि रोग होवे। ऐसे ही अंडों के नीचे सूत, रुई, नारियल या मक्का की जटा, शण रेशम अंबाडी घास फूस आदि और वस्तुएँ रखी होवें वे वस्तुएँ अवश्य तेज होजावें।

जो अँडा ऊंचा धरे तीन हाथ परमाण ।
इणसुं नीचा देखिये तो वर्ते कछु हाण ॥ ११ ॥

काल चिड़ी के अँडे उस स्थान की भूमि से उपर ३ हाथ सेऊंचे रखे तो अच्छा किन्तु इनसे नीचे रखे तो अच्छा नहीं।

टीटोड़ी के अँडा एक । कहे फोगसी काल विशेष ।
अँडे दोय टिटोड़ी धरे । अर्ध काल परजा अनुसरे ॥ १२ ॥
टीटोड़ी के अँडे तीन । रोग दोष में परजा छीन ।
टीटोड़ी के अँडे चार । नव खंड निपजे माघ विचार ॥ १३

टिटहरि के अँडा यदि १ हो तो दुर्भिक्ष, २ हो तो आधा काल, ३ होतो रोगादि का उपद्रव और ४ हो तो सर्वत्र अच्छा जमाना होवे ।

देख अँड आषाढ़ में टीटोड़ी के चार।
अँड चार चतुमास के वर्षा विशे विचार ॥ १४ ॥
ऊगम तो आषाढ को दक्षिण श्रावण धार।
पश्चिम भादुव जानिये उत्तर आसु बखान ॥ १५ ॥
ईशानो आषाढ को अग्नी श्रावण धार।
नैऋत भाद्रव जानिये वायव्य आसु विचार ॥ १६ ॥
अँडा जेते मास के वर्षा जेते मास।
अँडा नहीं जा मास के तितने मास निरास ॥ १७ ॥

आषाढ मास के प्रारम्भ में टिटहरि के बहुधा चार अँडे होते हैं उनको देखे। फिर वर्षा काल के चार महिनों की वर्षा के लिये उनकी कल्पना करे। पूर्व या इशान में के अँडे से आषाढ में दक्षिण या अग्नि में के अँडे से श्रावण में पश्चिम या नैऋत्य में के अँडे से भाद्रवामें और उत्तर या वायव्य में के अँडे से आसोज में वर्षा का विचार करे। जिस महिने के नाम का अँडा हो उन महिनों में तो वर्षा होवे और जिस महीने के नाम का अँडा न होवे तो उस महिने में वर्षा नहीं होवे। परन्तु—

नूंख भूमि दिशि देखिये वर्षा उतने मास ।
नूंख न दीखे भूमि दिशि उतने मास निराश ॥ १८ ॥
जो अंडा जिस कोणका अणियों वांकी होय ।
खुरी खंच वा देश में अन पण मँहगो जोय ॥१६॥

चारों अँडों में से जिस २ महिने के अंडे की तीखी अणि भूमि की ओर नीचे को हो उस२ महिनेमें वर्षा होवे और जिस२ महिने के अंडे की तीखी अणि आकाशकी ओर ऊंची हो उस २ महिने में वर्षा नही होवे । ऐसा ही जिस २ महिने के अँडे की अणी नीचे उपर को न हो किन्तु आडी तिरछी होवे तो उस महिने में वर्षा की खेंच होवे जिससे धान्य भी तेज होजावे ।

चारु अँडा चित्रवत् धरे अधोमुख जोय ।
फोग कहे सुण मायजी समवो सखरो होय ॥ १६ ॥

यदि चारु अंडो की तीखी अणियें तो नीचे और पीठ ऊपर हों तथा वे देखने में सुन्दर चित्रवत् धरे हो तो चारों ही महिनों में अच्छी वर्षा होवे जिससे संवत् बहुत उत्तम होवे ।

टिटी अंडा ऊंचा धरे । चार महिना निर्भर झरे ।
राखे अंडा नही निवाण । कहे फोगसी मेह री हांण ॥२०॥

टीटोडी अंडा धरे नाडी नदी निवाण।
पांच फूट परसे उडे फिर वर्षे मेह जाण॥ २१॥
टीटोडी सर तीर तज पाखति कहीं वियाय।
तो मेहा वर्षे घणो जल थल एक कराय॥ २२॥

टिटहरि अपने अंडे ऊंची भूमिपर धरे तो वर्षा बहुत होवे, नीची भूमिपर धरे तो कम होवे। यदि नदी तालाब आदि जलाशयमें धरे तो बहुत कम होवे। तथा उन अंडों में से बच्चे वहां से उड़कर चले जावें तब वर्षा होवे। यदि तलाव आदि-जलाशय में अंडे न धरके उन्हीं की पाल पर ऊंचा धरे तो वर्षा बहुत अधिक होवे।

अंडे ऊंची भूमि शुभ सम भूमि सम राश।
छगन घास पतली अशुभ चतुपद करत विनाश॥ २३॥

टिटहरि के अंडे ऊंची भूमिपर हों तो संवत् श्रेष्ठ, मध्यम भूमिपर हों तो मध्यम, और नीची भूमिपर हों तो वर्षा कम और अंडों के नीचे सूखा गोबर घास आदि हो तो चौपाये पशुओं का नाश होवे ऐसे ही सांप या हाड़ आदि होवे तो मनुष्यों में मरी (बीमारी) होवे।

सुन पावस इक बैठ के शंपम से चुग लेय।
सामा मांजर चुग उडे काल कहिये जेय॥ २४॥

जाही दिश बगुली गई वाही दिश चुग लेय ।
दृढ पावस यों जानिये जय जय कार करेय ॥ २४ ॥

सामा मांजर ना चुगे वेगोही उड़ जाय ।
दृढ पावस नही जानिये करवर समा कहाय ॥ २५ ॥

वर्षा काल के पहले बगुला हिंसाधर्म को छोड़कर अहिंसा मत धारण करके वृक्ष पर स्थिर होकर बहुत दिनों तक बैठा रहे और भक्ष्य भी उसको बुगली जङ्गली धान्य लाकरके देवे तो वर्षा अधिक होने से समय अच्छा होवे । परन्तु भक्ष के लिये बुगली जिस ओर जावे उसी दिशा से भक्ष्य चुगलावे तो वर्षा अच्छी होवे। यदि बुगला ऐसे व्रत का पालन थोड़े दिन करे तो वर्षा मध्यम होवे और जो बिलकुल ही न करे तो वर्षा थोड़ी होवे जिससे कुररा सम्वत् होवे ।

दिन में गीध शब्द जो करे। विघन उपावे दुर्भिक्ष पड़े॥२६॥

दिनमें गीध शब्द करे तो या तो कोई विघ्न होवे या दुर्भिक्ष पड़े ।

कौवा जब ही घर करे ले लकड़ी आषाढ़ ।
अथबिच पकड़े लाकड़ी दोनू साख सवाय ॥ २७ ॥
छेली पकड़े साख इक उभी पकड़े काल ॥ २८ ॥

आषाढ के महीने में काग अगर अपने घोसले के लिए लकड़ी को बीचमें से पकड़ के लावे तो दोनों शाखें (खरीफ तथा रवी-आषाढ़-उनाली) उत्पन्न होवे, एक किनारे से पकड़ के लावे तो एक शाख निपजे और जो खड़ी पकड़ के लावे तो दुर्भिक्ष पड़े ।

वर्षाके लिये कीड़ों की चेष्टा ।

कीड़ी कण आषाढ़ में बाहर नांखे आन ।
वर्षे भलो वर्षा घणी भीलन कहो बखान ॥ १ ॥
कीड़ी कण आषाढ में अन्दर लेजाती देख ।
तो अन्न तृणको काल लहो भीलन कहो विशेख ॥२॥

चींटियें यदि पहिले के संग्रह किये हुए धान्य को आषाढ में अपने घरों से बाहिर डालदे तो समयत् उत्तम तथा वर्षा अधिक होवे और जो बाहर नहीं डाले किन्तु अधिक संग्रह के लिये धान्यादि को घरमें लेजावे तो अन्न तथा घास पैदा न होवे जिससे अकाल पड़ जावे ।

मकड़ी जाल गुंथार में मेघ वृष्टि अति होय ।
जाले वृक्षन पर करे मेघ स्वल्प ही होय ॥ ३ ॥

*वर्षा काल के प्रारम्भ में मकड़ी कोठे आदि के भीतर जाले बनावे तो वर्षा अधिक होवे और जो कहीं वृक्षादि पर बनावे तो वर्षा कम होवे।

धुर आषाढे दूबरे सांडा जाय पयाल।
दरमुख दपटे गारसे वर्षा होय विशाल ॥ ४ ॥
सांडा शीतल भयधकी पैठे जाय पयाल।
दर मुख मूंदन कठिनदे ले घासन की गाल ॥ ५ ॥
सांडा दर दपटे नहीं काया मैमत होय।
निश्चय दुर्भिक्ष जानिये कहै भील सबकोय ॥ ६ ॥

*वर्षा काल के प्रारम्भ में सांडे शीतल पवन के भयसे दूबले होजावे तथा शीतल हवा से बचने के लिये अपने दरमें घुसके भीतर से घास मिट्टी आदि से दरका मुख बन्ध करलेवे तो वर्षा अधिक होवे। यदि सांडे दरमें न रह कर शरीर से पुष्ट होकर भूमि पर जहां तहां फिरते दिखाई दें तो वर्षा न होने से दुर्भिक्ष पड़ जावे।

सर्प जो निगले सर्प को श्याम श्वेत को भेद।
काल पड़े कालो गिटे सम्वत् करे सफेद ॥ ७ ॥

काला सर्प यदि श्वेत सर्प को निगल जावे तो दुर्भिक्ष पड़े। और जो श्वेत सर्प काले सर्प को निगल जाय तो सुभिक्ष होवे।

मक्खी मच्छर डांस हो भाग जमानो जांण।
उपजे जहरी जानवर काल तणा सहिनांण ॥ ८ ॥

जिस वर्ष में मक्खी मच्छर डांस अधिक उत्पन्न हों उस वर्षमें सुभिक्ष होवे और जो विषैले जन्तु अधिक उपजें तो काल पड़े।

अति काली भूमकड़ी बांबी देख सुठंक।
वर्ष भलो वर्षा घणी हुवे किराव निःशङ्क ॥ ६ ॥

जिस वर्ष में काले रङ्ग की मकड़ियें अधिक होवें उस वर्ष में वर्षा अधिक तथा जमाना अच्छा होवे।
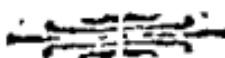
मनुष्यों की चेष्टा से तत्काल वर्षा का ज्ञान

अति पितवारो आदमी सोवे निन्द्रा घोर।
अन पढ़ियो अपदंहूतें कहे मेघ अतिजोर ॥ १ ॥

वात पित्त युत देह जो रहै मेघ सो धूम ।
अन पढ़िया आतम थकी कहै मेघ अति धूम ॥२॥

वर्षा काल में पित्त प्रकृति वाले मनुष्य घोर निन्द्रा में सोवे एसे ही वात पित्त प्रकृति वाले मनुष्य का शिर गर्मी से दूखने लगे तो तत्काल वर्षा बहुत जोर से होवे ।

जबलग जल शीतल नहीं उनेच मिटी नहीं देह ।
अन पढिये सब वो कहै तब लो जोर है मेह ॥३॥

तलाव आदि का पानी ठण्डा न होवे या पीने से स्वाद न लगे तथा गर्मी से शरीर बहुत व्याकुल हो जावे तो वर्षा जोरसे होवे ।

मनुष्यों के व्यवहारिक काम से तत्काल वर्षा का ज्ञान ।

कुन्दन जमे न जड़ाव पर जमे सलायन कीट ।
जड़िये सोनी सब कहै उड़े मेघ अति रीट ॥ ४ ॥

जड़ने की वस्तु पर कुन्दन नहीं लगै और कुन्दन जड़ने की लोहे की सलाइयों पर काट आजावे तो वर्षा जोरसे होवे ।

पीतल कांसी लोहनें जिण दिन काट चढंत ।
तो जाणीजे मडुली जलधर जल वर्षन्त ॥ ५ ॥

• पीतल कांसी लोह के काट आजावे तो वर्षा होवे ।

योंही साबुन नोन ज्यों नवसादर गलजाय ।
सोनी साबुनगर कहे वर्षा करे अन्याय ॥ ६ ॥

• साबुन, नमक, नौसादर गलने लग जावे तो वर्षा अधिक होवे ।

साल वसोला वीदनी कठिन कुहाड़े होय ।
जबलों जोरे मेघ अति कहे सुथारे सोय ॥ ७ ॥

• साल वसोला वीदनी कुल्हाड़ी आदि से लकड़ी काटने या छीलने में कठिनता पड़े तो वर्षा जोर से होवे ।

बिगड़े बासन चाक पर मटी अधिक उभार ।
आरख आगम समझ के भेद कहे कुंभार ॥ ८ ॥

'गीली मिट्टी के बर्तन चाक पर से न उतरें किन्तु वहीं बिगड़ जावे तो वर्षा शीघ्र होवे ।

गूने मूल पलाश को सिमटि गेंद सम होय।
ओड खरोली यों कहे मेहा कमीन कोय ॥ ६ ॥
जूना जलते मोथ गेह आगर मोंझ अंकूर।
दिन चौथे के पांचवे नाल खाल भरपूर ॥ १० ॥

पलास वृक्ष की जड़ सिमट कर भूमि में गेंद के समान गोल हो जावे तो वर्षा अधिक होवे। खारी नमक की आगरों में विना वर्षा कुए आदि के जल से नागरमोथे के नये अकुर निकस आवे, तो ४-५ दिनमें वर्षा अधिक होवे।

देख खुररी नायन कहे कन्था चलो विदेश।
जमा कीट अति रासरन् मौजें करे खदेश ॥११॥

हजामत बनाने के उस्तरों पर काट आजावे तो वर्षा बहुत होवे।

गोवर कीड़े देख अति जब मेह कहे गवाल।
तब असवारी मेघ की (जब) कोकिल मोर कुरलाल ॥१२॥

गोवर गलजावे, उसमें बहुतसे कीड़े पड़जावे वा कोकिल या मोर बहुत शब्द करे तो वर्षा होवे।

धोबिन धोखा मिटगयो मनमें हुआ हुलास।
देख सोदनी बजबजी हुई मेघ की आस॥ १३॥
कोरे कपड़े सोदनी जब अति गर्मी होय।
छुदम कीड़े सोदनी मेहा कर्मीन कोय॥ १४॥

* धोबी के कपड़े खूम में देने के माट में खँगार ऊठे या कोरे कपड़े वाली खूम के माट में गर्मी अधिक हो जावे अथवा छोटे २ कीड़े पड़जावें तो वर्षा बहुत होवे।

देख सूरी कहे ढेडनी कन्था टूटे नेह।
ल्हेई चढेन चर्मपर मुक्ता वर्षे मेह॥ १५॥

— जूते बनाते समय चमड़े पर लेही न चिपके तो वर्षा होवे।

चुनकर फेरी पांजनी छूखे नहीं सताब।
तब असवारी मेघकी (जब) लालरंग लरियाब॥१६॥

* कपड़ा बुनने के सूत के ताने पर लगाई हुई मांड शीघ्र न सूखे तो वर्षा होवे।

ढोल दमामे दुलरी बोर्ले नादर बाज।
कहे ढोम दिन तीन में इन्द्र करे आवाज॥१७॥

ढोल नक्कारा तासा आदि चमड़े से मढे हुए बाजे यदि ठीक न बजे तो तीन दिनमें वर्षा होवे।

मूंज अम्बाड़ी जेवड़ी चोपाई असबाय।
पुन छतीसो यों कहे वर्षा करे अचाय ॥ १८ ॥

मूंज अम्बाडी रस्सी वा चारपाई ऐंठे तो वर्षा होवे।

आगम सूजे सवन को माघव आवन हार।
कागज फूटे लेखनी लेहा लेह विचार ॥ १९ ॥

लिखने के समय अक्षरों की स्याही कागज के दूसरी ओर को फूट निकले तथा शीघ्र न सूखे तो वर्षा होवे।

अमली अमलई एलरया गांधी गलन किराल।
गाडर गूंद ज्यूं चीकणी मेहा मुक्ति पखान ॥२०॥

अफीम गुड नमक सज्जी नवसादर आदि गलने लगे वा भेड, गूंद जैसी चिकनी होजावे तो वर्षा होवे।

विगड़ घृत विलोवने वनिता होय उदास।
तव असवारी मेघकी तव नहीं आज्यको आस ॥२१॥
खाटी होगई छाछ दूध विनल दधि तीचलै।
आसी मेह अपार घड़ियों पलकों माघजी ॥ २२ ॥

माखण ठरियो माट छिण छिण आयो छाछपर ।
गई मेघकी आश वृद्ध हुआ मेह माघजी ॥ २३ ॥

दही मथने पर यदि मक्खन न निकले या छाछ बहुत खट्टी होजावे या दूध या दही में खमीर आजावे तो वर्षा बहुत शीघ्र जोर से होवे। और जो दही मथने के समय मक्खन छाछ पर शीघ्र ही आजावे तो अभी कुछ दिन वर्षा नहीं होवे।

पशुओं की चेष्टा से तत्काल वर्षा।

आगम लखके ऊंटनी दौड़े शलन अपार।
पग पटके बैठे नहीं माघव आवन हार ॥ १ ॥

ऊंटनी भूमि पर इधर उधर दौड़े और आगले पैरों को पछाड़े किन्तु बैठे नहीं तो शीघ्र वर्षा होवे।

साबुन कैसे झाग पुनि गादर फुलती हुन्त।
दौड़े सन्मुख पवन के जल थल टेल मरन्त ॥ २ ॥

भेड़ के साबुन जैसे झाग आजावे और वायु के सामने दौड़े तो वर्षा शीघ्र होवे।

पक्षियों की चेष्टा से तत्काल वर्षा

खग पंखा फैलाय उभकी चोंच पवना भखे।
तीतर गूगा थाय इन्द्र धड़ूके माघजी ॥ १ ॥

बगुला आदि पक्षी पंख फेलायके बेठे तथा चोंच से वायु को भक्षण करे वा तीतर शब्द न करे तो वर्षा होवे।

टोले मिलके कांवली आय थलन बैठन्त।
दिन चौथे के पांचवे जल थल ठेल भरन्त ॥ २ ॥

बहुतसी चोले भूमिपर आवेठे तो चौथे वा पाचवे दिन वर्षा बहुत होवे।

पप्पैयो पिऊ पिऊ करे मोरां घणी अजग्गा।
छत्र करे मोरयो सिरै नदियां वहै अथग्गा ॥ ३ ॥

पपीहा (चातक) पिऊ २ शब्द करे वा मोर बार २ शब्द करे तथा पांखों का छत्र बनावे तो वर्षा अधिक होवे।

सारसरे शृङ्गन भ्रमें लरुयारी कुरलेह।
अति तरनावे तीवरी तब अति जोरे मेह ॥ ४ ॥

सारस पर्वतों के शिखरों पर अमें लगातार शब्द करे या बोलते अति जोरसे बार २ शब्द करे तो वर्षा होवे।

खंजन शिखा उतार दए पड़्यो वृद्ध मांग मेह ।
कुरज उड़ी कुरलाय पूछ हुआ मेह मापजी ॥ ६ ॥

वर्षाकाल से पहिले खञ्जन पक्षी के सिर पर शिखा निकलती है जिससे वह दृष्टिमें नहीं आता है और जब भादों आसोज में इसकी शिखा गिर जाती है तब यह दीखने लगता है। अतः जब खञ्जन दीखने लगे तब वर्षा काल समाप्त हुआ जानो ऐसे ही कुरज (पक्षी) शब्द करते २ उड़ते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने लगे तो भी वर्षा काल समाप्त हुआ जाने अर्थात् शेष वर्षा का जोर नहीं रहा जाने।
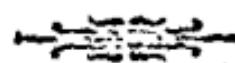
कीड़ों की चेष्टा से तत्काल वर्षा

साप गोहिड़े डेडुरे कीड़ी मकोड़े जान ।
दर छाड़े थलपर अनें मेहा शुक्ति बखान ॥ १ ॥

साप गोहिड़े मेंढक कीड़ियें या मकोड़े अपने दरोंसे निकल कर भूमिपर इधर उधर फिरने लगे तो शीघ्र वर्षा होवे।

काँसी तो कांमण चढे विष चढे वड़ों ।
पंडत पतड़ा नांकदे घणा वर्षे इतरा गुणों । २ ॥

, कांसी के बरतन रङ्ग बदल होजावे अथवा सर्प बड़के वृक्ष पर चढ़े तो बहुत जोर से वर्षा होवे ।

गिरगट रंग विरंग हो मक्खी चटके देह ।
माकडियें चह चह करें जब अति जोरे मेह ॥ ३ ॥

गिरगट बार बार रंग बदले मक्खी मनुष्यों की देह पर चपके या तिवरी लगातार शब्द करे तो वर्षा होवे ।

उदेई ऊठे घणी कस्यारी चमचाय ।
रातूं बोले विसमरी इन्द्र महोत्सव आय ॥ ४ ॥

दीमक अधिक निकले (उनके दर गीले होवे) कस्यारी बहुत शब्द करे या रात्रिमें छिपकली शब्द करे तो वर्षा होवे ।

कीड़ी मुखमें अँडले दर तज भूमि भ्रमन्त ।
वर्षा ऋतु विशेष यों जल थल ठेल भरन्त ॥ ५ ॥
याम दोय के तीन मैं केयों दिन न प्रमाण ।
करे मेघ वृष्टी अति कहै नन्द निरवाण ॥ ६ ॥

वर्षा काल में बिना किसी कारण के चींटियें अपने अँडोंको मुखमें लेकर भूमिपर इधर उधर फिरने लगें तो २-३ प्रहर में-या-२-३ दिन में बहुत वर्षा होवे।

जल के जन्तुओं से तत्काल वर्षा।

झींगा मच्छी तरवरे मगर युद्ध अतिशोर।
याम दोय के तीन में चढे घटा नहुं ओर॥ १॥

छोटी मछलियें जल के ऊपर जोर से उछलें अथवा मगर आपस में युद्ध करें या शोर मचावे तो २ या ३ प्रहर में वर्षा की घटा चढ़े।

दादुर पानी छोड़ के बाहर बैठे आय।
अथवा कूके जोरसे वर्षा करे अन्याय॥ २॥

मेंढक पानी से निकल कर बाहर आ बैठे अथवा जोर जोर से शब्द करें तो वर्षा आने वाली जानें।

॥ इति ॥